• वर्ष ६६ • अंक ९ • मूल्य ₹ २०

मई (प्रथम) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

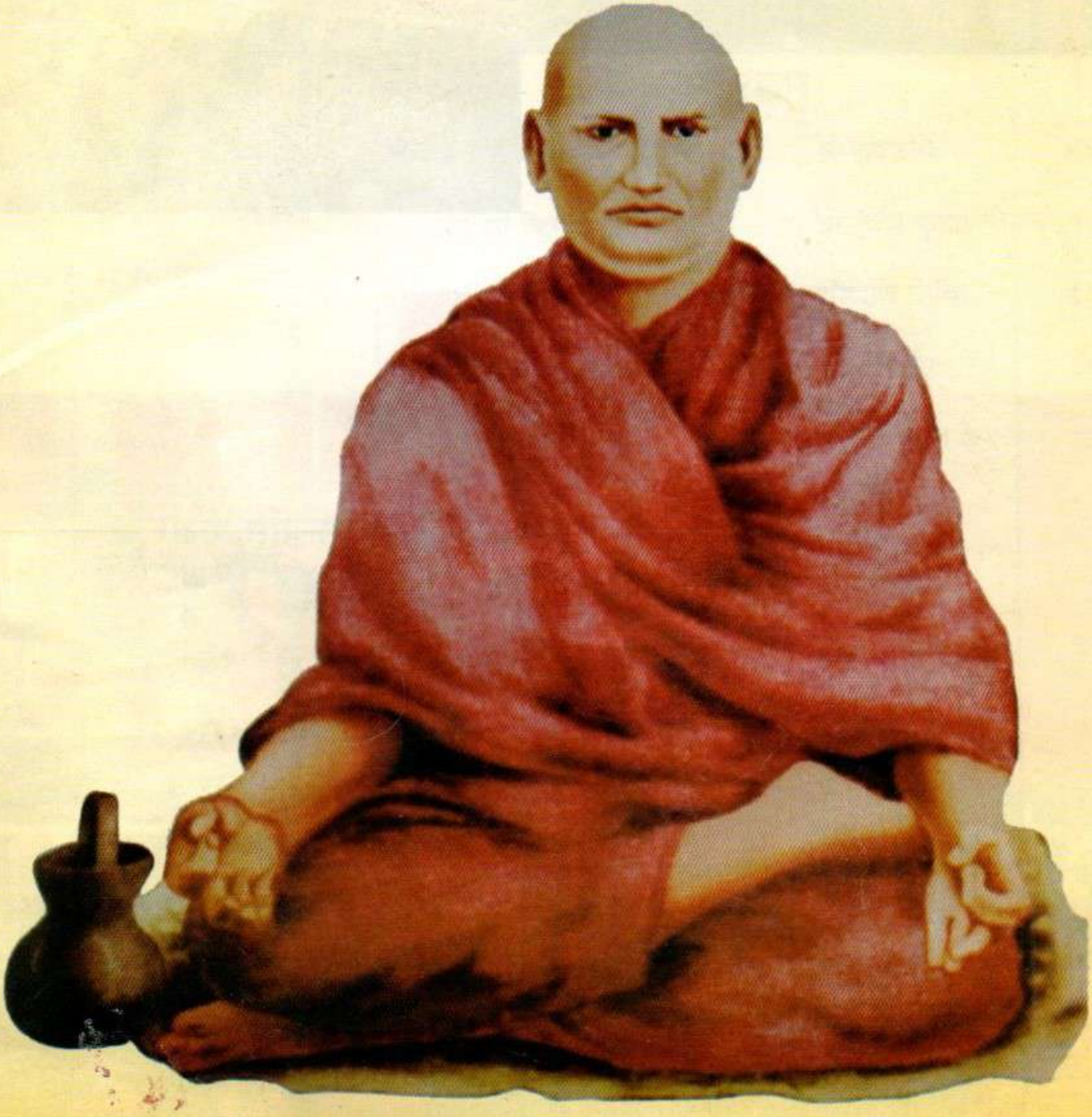

महर्षि दयानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा द्वारा नवीन प्रचार वाहन का लोकार्पण

संन्यास दीक्षा

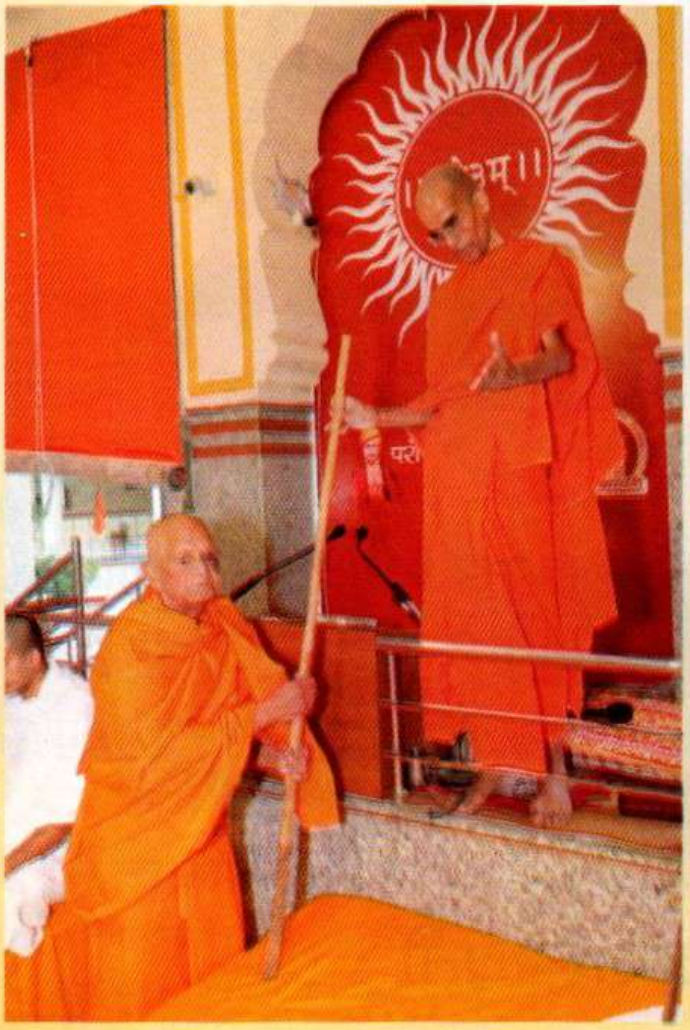

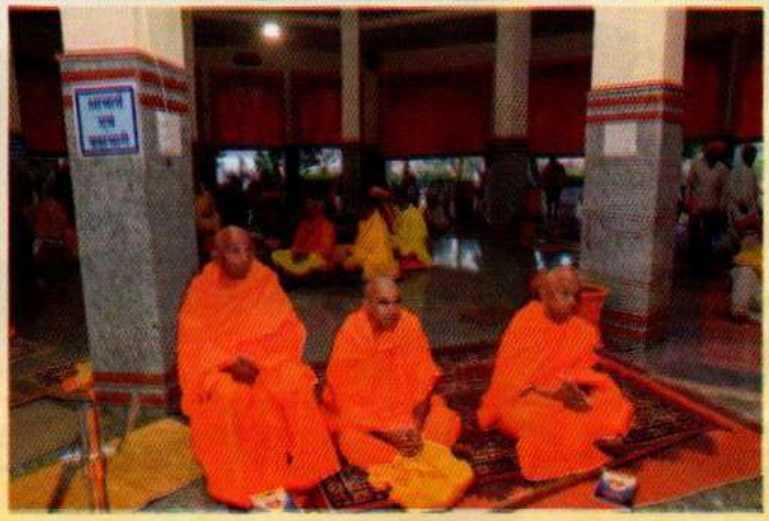

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ अंक : ०९

दयानन्दाब्दः २००

विक्रम संवत् - वैशाख कृष्ण २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

▪

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

▪

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

▪

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२९३२७

▪

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

मई प्रथम, २०२४

अनुक्रम

०१. अर्थ लिप्सा अनर्थ का मूल	सम्पादकीय	०४
०२. सूर्य की किरणों द्वारा मेघ....	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०५
०३. आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर		१३
०४. जीवन कर्मफलों का योग	डॉ. रामवीर	१४
०५. वेद पर्यटन	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१५
०६. निवेदन		२०
०७. ०५. ज्ञान सूक्त-१३	डॉ. धर्मवीर	२१
०८. यज्ञशाला- सुख शान्ति की शाला	श्री धर्मेन्द जिज्ञासु	२४
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३१
०९. संस्था की ओर से....		३२
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

अर्थ लिप्सा अनर्थ का मूल

अर्थ शब्द अनेक अर्थ का वाचक होते हुए भी मुख्यत: विनिमय के साधन मुद्रा - रुपया के अर्थ में प्रचलित है। जीवन - यापन के लिए अपेक्षित - भोजन, वस्त्र, आवास आदि अन्य सभी साधन अर्थजन्य हैं, किन्तु अर्थ से प्राप्त ये साधन मनुष्य की सम्पूर्ण तुष्टि में समर्थ नहीं हैं। इसीलिए भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ - चतुष्टय में अर्थ को स्थान प्रदान किया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ प्रथम स्थानी न होकर द्वितीय स्थानी है। चतुर्थ/अन्तिम स्थान भी अर्थ को नहीं दिया गया है। यदि यही जीवन का चरम लक्ष्य होता, तब इसे चतुर्थ स्थान प्राप्त होता। क्रमश: - धर्म - अर्थ - काम - मोक्ष। अर्थात् वह अर्थ/धन जो हमारी कामनाओं/इच्छाओं की पूर्ति का साधन है, उसके मूल में 'धर्म' हो और उसका लक्ष्य कामनाओं की पूर्ति करते हुए भी चरम बिन्दु या लक्ष्य मोक्ष होना चाहिए।

सामान्य व्यवहार में सिद्धान्त और आचरण में भेद दिखाई देता है। यदि सिद्धान्त आचरण का अंग बन जाये तो अधिकांश सामाजिक समस्याओं को समूल उन्मूलन सम्भव है। मनुष्य की इच्छाओं को मर्यादित किए बिना न तो वह स्वयं सुखी रह सकता है और न ही समाज। इसलिए धर्म = नैतिकता का आचरण करते हुए किया गया अर्थार्जन सुख का आधार बनता है। चाणक्य का महत्त्वपूर्ण कथन है- **'सुखस्य मूलं धर्म:'** अर्थात् सुख का मूल - आधार धर्म = कर्त्तव्य पालन, नैतिक आचरण है।

मनुष्य अपनी अज्ञानता - अविवेक तथा सत्संकल्प के कमजोर होने के कारण नैतिक - उचित एवं अनुचित भेद करने में असफल होकर अनैतिक की ओर झुक जाता है। इस कारण अर्थार्जन के लिए कर्त्तव्याकर्त्तव्य को छोड़कर केवल धन के लिए दौड़ता है। दूसरे को धोखा देना, ऋण लेकर न लौटाना, दृष्टि बचाकर धन हरण कर लेना ये बातें सामान्य हो गई हैं।

नैतिक पतन की पराकाष्ठा का ताजा उदाहरण अभी झुंझुनूं राजस्थान का है। समाचारों के अनुसार २४ मार्च की रात्रि में एक कार में आग लगने से एक व्यक्ति जिन्दा जल गया। पुलिस और परिजनों ने इसकी पहचान चौबीस वर्षीय फौजी विकास भास्कर के रूप में की और उसका अन्तिम संस्कार कर दिया गया। किन्तु बाद में पता चला कि वहीं का एक अन्य व्यक्ति घटना के दिन से लापता है। अन्वेषण में स्पष्ट हुआ कि घटना के दिन कार स्वामी और उसके खेत में मजदूरी करने वाला (लापता व्यक्ति) दोनों एक साथ देखे गए थे।

पुलिस अनुसन्धान में स्पष्ट हुआ कि विकास भास्कर ने डेढ़ मास पूर्व डेढ़ करोड़ की बीमा पॉलिसी ली थी। उसी को हड़पने के लिए घटना को अंजाम दिया गया। कार में जला शव मजदूर का था। यह दूसरी बात है कि पुलिस का शिकंजा कसता देख वह घर पहुँचा, किन्तु बेसुध हालत में। झुंझुनू के बी. डी. के. अस्पताल में उपचार के दौरान उसकी (विकास की) भी मौत हो गई।

यह घटना केवल समाचार मात्र नहीं है। क्या इसे पढ़कर किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को विचलित नहीं हो जाना चाहिए? मानव के पतन का दूसरा कौन सा उदाहरण होगा, जिसकी प्रतीक्षा की जानी चाहिए? एक व्यक्ति जिसके पास कृषि भूमि भी है। रोजगार भी है, साथ ही कुछ करने योग्य युवावस्था भी है। इससे बढ़कर वह कौनसी परिस्थितियां हो सकती हैं, जो एक व्यक्ति को अर्थार्जन के लिए चाहिएं?

धन के लिए इतना जघन्य कृत्य करने के पूर्व क्या एक बार भी वह ठिठका नहीं? यदि हां! तो यह पूरे समाज के लिए चिन्ता से बढ़कर व्यग्र करने वाली घटना है।

इसका समाधान मृतक अथवा धन की निन्दा में न ढूंढकर वैयक्तिक एवं सामाजिक सोच में खोजना चाहिए। कहीं न कहीं हमारी शिक्षा, पारिवारिक संस्कार और सामाजिक परिवेश पुनर्चिन्तन की अपेक्षा कर रहे हैं। नैतिक मूल्य प्रधान व्यक्ति की अपेक्षा धनाढ्य के प्रति बढ़ता सामाजिक सम्मान भी तो कहीं इसके लिए उत्तरदायी नहीं है?

- डॉ. वेदपाल

सूर्य की किरणों द्वारा मेघ के संहनन से वर्षा

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः—परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता—इन्द्रः, +अग्निः, ++यज्ञः छन्दः—निचृदुष्णिक् (२८-१), +भुरिगार्चीगायत्री (१८+१), ++भुरिगुष्णिक् (२८+१), स्वरः—ऋषभः, +षड्जः, ++ऋषभः]

विषयः— पुनस्ताः कथंभूता आप इन्द्रवृत्रयुद्धं चेत्युपदिश्यते॥

(पूर्वोक्त जल किस प्रकार के हैं और इन्द्र एवं वृत्र का युद्ध कैसे होता है; इस विषय का उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है॥)

युष्माऽ इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये[१] युयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये[२] प्रोक्षिता स्थ[३]। +अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यु[४]ग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि[५]। ++दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयुज्यायै[६] यद्वोऽशुद्धाः पराजुघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि[७]॥

–यजु० १.१३॥

[अनु०-०, नि०-१७, उ०-२२, स्व०-१२, प्र०-२४ = ७५ अक्ष०, क०मं०-५, पा०-७]

पदपाठः— युष्माः। इन्द्रः। अवृणीत। वृत्रतूर्यऽ इति वृत्रऽ तूर्ये।[१] युयम्। इन्द्रम्। अवृणीध्वम्। वृत्रतूर्यऽ इति वृत्रऽ तूर्ये।[२] प्रोक्षिताऽ इति प्रऽ उक्षिताः। स्थ।[३] अग्नये। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि।[४] अग्नीषोमाभ्याम्। त्वा। जुष्टम्। प्र। उक्षामि॥[५] दैव्याय। कर्मणे। शुन्धध्वम्। देवयुज्यायाऽ इति देवऽ युज्यायै।[६] यत्। वः। अशुद्धाः। पराजुघ्नुरिति पराऽ जुघ्नुः। इदम्। वः। तत्। शुन्धामि[७]॥ १३॥

[अनु०-३०, नि०-१९, उ०-३२, स्व०-१८, प्र०-१२ = १११ अक्ष०, अव०प०-५, ग०प०-४, स०प० -३२]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
वृत्रतूर्ये	वृत्रस्य मेघस्य तूर्यो वधस्तस्मिन्॥ वृत्र इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१ ।१०) 'तूरी गतित्वरणहिंसनयोः' इत्यस्मात् कर्मणि ण्यत्॥ वृत्रतूर्य इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२ ।१७)॥	परमेश्वर उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! मेघों के संहनन रूपी संग्राम में
इन्द्रः	सूर्यलोकः॥	सूर्य ने
युष्माः	ताः पूर्वोक्ता आपः॥ अत्र व्यत्ययः। वा	तुम्हारे लिए उन जलों का

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
	छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति [अष्टा०१.४.९ भा०] इति शसः सकारस्य नत्वाभावश्च॥	
अवृणीत	वृणीते॥ अत्र लडर्थे लङ्॥	वरण कर लिया है।
वृत्रतूर्ये	वृत्रस्य तूर्ये शीघ्रवेगे॥	मेघों के संहनन से वेगपूर्वक वर्षा के रूप में प्राप्त होनेवाले इस काल में
यूयम्	विद्वांसो मनुष्याः॥	आप सब
इन्द्रम्	वायुम्॥ इन्द्रेण वायुना। (ऋ० १ ।१४ ।१०) इतीन्द्रशब्देन वायोर्ग्रहणम्॥	वायु से संयुक्त वर्षाजल का
अवृणीध्वम्	वृणते स्वीकुरुध्वम्॥ अत्र प्रथमपक्षे लडर्थे लङ्॥	स्वीकरण कीजिए।
प्रोक्षिताः	प्रकृष्टतया सिक्ताः सेचिता वा॥	इस वर्षा जल से ही आप सब भली प्रकार सिञ्चित
स्थ	भवन्ति॥ अत्रापि व्यत्ययः॥	हो रहे हो।
अग्नये	भौतिकाय परमेश्वराय वा॥	निरन्तर आगे ही आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले मुझ परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अथवा भौतिक अग्नि-विद्या की सिद्धि के लिए
जुष्टम्	विद्याप्रीतिक्रियाभिः सेवितम्॥	ज्ञानपूर्वक प्रसन्न एवं सपर्पण भाव से युक्त
त्वा	तं यज्ञम्॥	यज्ञीय-व्यवहार वाले तुम उपासकों को
प्र	[प्रकृष्टतया]	मैं भली प्रकार
उक्षामि	सेचयामि॥	पवित्रता से सिञ्चित करता हूँ।
अग्नीषोमाभ्याम्	अग्निश्च सोमश्च ताभ्याम्॥	तेजस्विता और सौम्यता की प्राप्ति के लिए
जुष्टम्	प्रीतं प्रीत्या सेवनीयम्॥	प्रीति पूर्वक संलग्न
त्वा	तं वृष्ट्यर्थम्॥	तुम उपासकों को
प्र	[प्रकृष्टतया]	मैं भली प्रकार
उक्षामि	प्रेरयामि॥	प्रेरित करता हूँ।
दैव्याय	दिवि भवं दिव्यं तस्य भावस्तस्मै॥	दिव्य भावों वाले श्रेष्ठ

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
कर्मणे	पञ्चविधलक्षणचेष्टामात्राय॥ उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥ (वैशे०१।७) इत्यत्र पञ्चविधं कर्म गृह्यते॥	कर्मों के लिए तथा
देवयज्यायै	देवानां विदुषां दिव्यगुणानां वा यज्या सत्क्रिया तस्यै॥ छन्दसि निष्टर्क्य०। (अष्टा०३।१।१२३) इति देवयज्याशब्दो निपातितः॥	विद्वानों का सत्कार करने के लिए
शुन्धध्वम्	शुन्धन्ति शोधयत वा॥ अत्रापि व्यत्ययः, आत्मनेपदं च॥	तुम सब स्वयं को शुद्ध बनाए रखो अर्थात् तुम्हारे मन में कभी भी मलिनता न आने पाए।
यत्	यस्माद्यज्ञेन शोधितत्वात्॥	जिस कारण
वः	तासां युष्माकं वा॥	तुम्हारे
अशुद्धाः	न शुद्धा अशुद्धा गुणाः॥	अशुद्ध भाव
पराजिग्युः	पराहता विनष्टा भवेयुः॥ अत्र लिङर्थे लिट्॥	विनष्ट होते रहें।
वः	तासां युष्माकं वा॥	तुम्हारे
इदम्	शोधनम्॥	इस शुद्ध हुए यज्ञिय व्यवहार को
तत्	तस्मादशुद्धिनाशेन सुखार्थत्वात्॥	सर्वविध सुख पाने के लिए
शुन्धामि	पवित्री करोमि॥ अयं मन्त्रः। (शत०१।१।३।८-१२) व्याख्यातः॥ १३॥	मैं और अधिक पवित्र करता हूँ॥

तत्त्वबोध–

१.युष्माः[१] , इन्द्रः[२] , अवृणीत[३] , वृत्रतूर्ये[४]– प्रस्तुत मन्त्र में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। यह मानवीकरण प्रायः उपमा, लुप्तोमा अथवा रूपक अलङ्कार के माध्यम से किया जाता है। महर्षि दयानन्द

१. 'युष्मसिभ्यां मदिक्' (उणा० १.१३९) इति 'मदिक्' प्रत्ययङ्ग, तेन युष्मच्छब्दः प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः, ततः शसि 'द्वितीयायां च'(अष्टा० ३.४.५३) इत्याकारादेशे 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (अष्टा० ८.२.५) इत्यन्तोदात्तत्वम्– 'युष्माः'॥

२. इदि परमैश्वर्ये (भ्वादिगणः परस्मैपदी) 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्ल-गौरवप्रेरामालाः'(उणादि० २.२८) इति कर्तरि रन् प्रत्ययः, इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने, विभक्त्यनुदात्तत्वे शेषस्य सर्वानुदात्तत्वे चाद्युदात्तस्वरः,

ने इस मन्त्र में लुप्तोपमा अलङ्कार स्वीकार किया है। यहाँ इन्द्र से तात्पर्य सूर्य से है और वृत्र का अर्थ है मेघ। आकाश में घनीभूत बर्फ बने हुए जल पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो वर्षा के रूप में जल की प्राप्ति होती है। यही इन्द्र (सूर्य) द्वारा वृत्र (मेघ) का संहनन है। इस संहनन का परिणाम ही वर्षा रूप में जल का प्राप्त होना है। मेघ से जलों का यह संवरण = निष्करण ही इन्द्र (सूर्य) की वृत्र (मेघ) पर विजय है।

२. युयम्[1], इन्द्रम्[2], अवृणीध्वम्[3], वृत्रतूर्ये[4] – परमात्मा के सृष्टि-यज्ञ में सूर्य की किरणों द्वारा पार्थिव जल को भाप बनाकर वायु द्वारा उसे आकाशीय समुद्र में पहुँचाना, शीतल वायु के सम्पर्क से उसका बर्फ के रूप में मेघ बनना, पुनः सूर्य की किरणों द्वारा मेघ का संहनन और मेघों के छिन्न-भिन्न होने से वर्षा होना, वायु का इस प्रक्रिया को गति प्रदान करना – यह सब परमात्मा की व्यवस्था से निरन्तर चलनेवाला

उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः– 'इन्द्रः'॥ देवराजस्तु स्वनिघण्टुभाष्ये 'रक्' प्रत्ययमाह, स च लेखकप्रमाद एवेत्यनुमिमीमहे वेदेऽन्तोदात्तस्येन्द्रशब्दस्य सर्वथाऽसत्वात्, 'वृधिवपिभ्यां रन्' (उणादि० २.२७) इत्यतो रन्-प्रत्ययस्यानुवर्त्तनाच्च॥

३. वृङ् सम्भक्तौ (क्र्यादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोर्लङ्-लकारे प्रथमपुरुषैकवचने त-प्रत्यये– वृ + त। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (अष्टा० ३.१.८१) इति श्नाविकरणे, 'लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (अष्टा० ६.४.७१) इत्यडागमः, उदात्तश्च, 'सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वं च' (अष्टा० ६.१.५८ महा०), 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'इत्यनेन सर्वे शिष्टाः अनुदात्ताः– अट् + वृ + ना + त। 'ई हल्यघोः' (अष्टा० ६.४.११३) इतीत्वे –अ + वृ + नी + त। 'अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि (अष्टा० ८.४.२) इति णत्वे– अ + वृ + णी + त। उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्ताराणामैकश्रुत्यं च– 'अवृणीत'। संहितायां 'तिङ् ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'अवृणीत' ॥

४. वृतु वर्तने (भ्वादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोः 'स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्धुन्दिश्विति-वृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसि-वाशिशीङ् हसिसिधिशुभिभ्यो रक्'(उणा० २.१३) इति रक्-प्रत्ययः, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'वृत्र'। नपुंसकप्रथमैकवचने – 'वृत्रम्'॥ तूरी गतित्वरणहिंसनयोः (दिवादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोः कर्मणि 'ऋहलोर्ण्यत्' (अष्टा० ३.१.२४) इति ण्यत्-प्रत्ययः। 'तित्स्वरितम्' (अष्टा० ६.१.१८५) इत्यादिस्वरः स्वरितः–तूर्य। नपुंसकप्रथमैकवचने – 'तूर्यम्'॥ वृत्रस्य तूर्य इति 'कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम्' (अष्टा० २.२.८ भा० वा०) इति षष्ठीसमासे 'समासस्य' (अष्टा० ६.१.२२३) इति समासान्तोदात्तत्वे प्राप्ते 'परादिश्छन्दसि बहुलम्' (अष्टा० ६.२.१९९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम्। सप्तम्येकवचने– 'वृत्रतूर्ये'॥

५. युष्मद् - प्रातिपदिकात् प्रथमाबहुवचने जसि, 'ङे प्रथमयोरम्' (अष्टा० ७.१.२८) इत्यमादेशे– युष्मद्+अम्। 'यूयवयौ जसि' (अष्टा० ७.२.९३) इति युष्म्-स्थाने यूयादेशे– यूय+अद्+अम्। 'अतो गुणे' (अष्टा० ७.२.९३) इति पररूपैकादेशे– यूय+द्+अम्। 'शेषे लोपः' (अष्टा० ७.२.९०) इति शिष्टस्य दकारस्य लोपे, पुनश्च पररूपैकादेशे– यूयम्। प्रातिपदिकस्वरेणैवान्तोदात्तत्वम्– 'युयम्'॥

६. इदि परमैश्वर्ये (भ्वादिगणः परस्मैपदी) 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्ल-गौरवप्रेरामालाः'(उणादि० २.२८) इति कर्तरि रन् प्रत्ययः, इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, पुंसि द्वितीयैकवचने, विभक्त्यनुदात्तत्वे शेषस्य सर्वानुदात्तत्वे चाद्युदात्तस्वरः, उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः– 'इन्द्रम्'॥

७. वृङ् सम्भक्तौ (क्र्यादिगणः, आत्मनेपदी) इति धातोर्लङ्-लकारे मध्यमपुरुष-बहुवचने ध्वम्-प्रत्यये– वृ + ध्वम्। 'क्र्यादिभ्यः श्ना' (अष्टा० ३.१.८१) इति श्नाविकरणे, 'लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वडुदात्तः' (अष्टा० ६.४.७१) इत्यडागमः, उदात्तश्च, 'सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वं च' (अष्टा० ६.१.५८ महा०), 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'इत्यनेन सर्वे शिष्टाः अनुदात्ताः– अट् + वृ + ना + ध्वम्। 'ई हल्यघोः' (अष्टा० ६.४.११३) इतीत्वे – अ + वृ + नी +ध्वम्। 'अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि (अष्टा० ८.४.२) इति णत्वे– अ + वृ + णी + ध्वम्। उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्ताराणामैकश्रुत्यं च– 'अवृणीध्वम्'। संहितायां 'तिङ् ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् – 'अवृणीध्वम्' ॥

चक्र है। यह सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् को जीवन देने वाला, आनन्ददायक तथा उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाला ईश्वरीय उपहार है। परमेश्वर का उपदेश है कि इस व्यवस्था का तुम सब वरण करो, इसे यथावत् स्वीकार करते रहो। इसके साथ छेड़खानी मत करो; क्योंकि यही तुम्हारे सुखमय जीवन का मुख्य आधार है। इसे प्रसन्नभाव से स्वीकार करना ही इसका वरण है और प्रकृति का अनावश्यक दोहन करके इस व्यवस्था को बाधित करना ही जड़-चेतन जगत् के क्षरण का हेतु है। प्रकृति का अनावश्यक दोहन अयज्ञिय व्यवहार है, जो विनाशकारक है।

३. प्रोक्षिताः[८], स्थ[९] – परमात्मा पिता की भाँति दयालुभाव से अपनी सन्तान को उपदेश कर रहे हैं कि तुम इस वर्षा के जल का सदुपयोग करते हुए सदैव सुख आदि से अभिसिञ्चित रहो।

४. अग्नये[१०], त्वा[११], जुष्टम्[१२], प्र[१३], उक्षामि[१४] – परमात्मा की प्रेरणा ही उसका अभिसिञ्चन है। आज भी विद्वान् लोग विशेष अवसरों पर जल के छींटे देकर आशीर्वाद प्रदान किया करते हैं। यह उसका ही प्रतिरूपण मात्र है। इस अभिसिञ्चन उद्देश्य क्या है, किसलिए प्रेरणा दी जा रही है, उत्तर है – अग्नये = भौतिक अग्नि-विद्या की सिद्धि के लिए जिससे विविध प्रकार के यनत्रादि का निर्माण करके मानव-जीवन को सुखमय बनाया जा सके तथा निरन्तर आगे ही आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले परमेश्वर की प्राप्ति के लिए। परमात्म-सान्निध्य से मिलनेवाला आनन्द ही शाश्वत आनन्द है, अन्य सभी भौतिक सुख तो क्षणिक होते हैं। उसकी भी एक शर्त है, उपासक का जुष्ट अर्थात् समर्पणभाव से युक्त होना। यह समर्पणभाव जब परमात्मा के प्रति होता है तो उसी से प्रतिफलित होकर वह समस्त चराचर जगत् के प्रति भी अपार प्रेम से भर जाता है। ऐसे समर्पित भाव वाला व्यक्ति सिद्ध की गई अग्निविद्या से उन्हीं वैज्ञानिक संयन्त्रों का विकास करता है, जो प्रकृति और मनुष्य-पशु-पक्षी आदि सभी के लिए हितकारक होता है।

---

८. उक्ष सेवने (भ्वादिगणः परस्मैपदी) निष्ठायां क्त-प्रत्ययः, इडागमः, प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः – 'उक्षित'। 'गतिरनन्तरः' (अष्टा० ६.२.४९) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे 'उपसर्गश्चाभिवर्जम्' (फिट् ८१) इत्युदात्तः प्रशब्दः, स्वरसन्धौ गुणैकादेशे 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (अष्टा० ८.२.५) इत्यनेन 'प्रो' इत्युदात्तः , ततः उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्तरस्यैकश्रुत्यं च, पुंसि प्रथमायाः बहुवचने– 'प्रोक्षिताः' ॥

९.अस् भुवि (अदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोर्लटि मध्यमपुरुषबहुवचने 'थ'-प्रत्यये 'श्नसोरल्लोपः' (अ० ६.४.१११) इत्यकारलोपे प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् 'स्थ', संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८ . १.२८) इति सर्वानुदात्तः॥

१०. अगिः गत्यर्थः। गतेस्त्रयो ऽर्था भवन्ति ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति। अङ्क्ति=जानाति इत्यग्निः। 'अङ्कैर्नलोपश्च' (उणा० ४.४९०) इति निप्रत्ययो नलोपश्च। प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः – 'अग्नि'। ततश्चतुर्थ्येकवचने – अग्नि + ङे। 'घेर्ङिति' (अष्टा० ७.३.१११) इति गुणादेशे – अग्ने + ए। 'एचोऽयवायावः' (अष्टा० ६.१.७८) इति अयादेशे, 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा० ८.४.६६) इति स्वरितत्वे च –'अग्नये' शब्दो निष्पन्नः॥

१०. 'त्वाम्' इति स्थाने प्रयुक्तम्, 'त्वामौ द्वितीयायाः' (अष्टा० ८.१.२३), 'अनुदात्तं सर्वमापादादौ'(अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्वमनुवर्तते॥

१२. 'जुष्टार्पिते च छन्दसि, नित्यं मन्त्रे' (अष्टा० ६.१.२०९-२१०) इति नित्यमाद्युदात्तत्वे – 'जुष्टम्' इति पदम्॥

१३. 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्, यद्वा 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इत्यनेनाद्युदात्तत्वम्॥

१४. उक्ष सेवने (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः लटि उत्तमपुरुषैकवचने मिप्-शपौ, तौ चानुदात्तौ, 'अतो दीर्घो यञि' (अष्टा० ७.३.१०१) इति दीर्घे, धातुस्वरेणाद्युदात्तत्वम्, ततः उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्तरस्यैकश्रुत्यं च– 'उक्षामि'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'उक्षामि' ॥ मन्त्रे (यजु०१.१३) तु – प्र + उक्षामि = प्रोक्षामि॥

५. **अग्नीषोमाभ्याम्**[१५] , **त्वा, जुष्टम्, प्र, उक्षामि** – भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जगत् में 'अग्नि' और 'सोम' दोनों तत्त्वों की समान आवश्यकता है। बृहत् जाबाल उपनिषद् (२.४) में कहा गया है– "अग्नीषोमात्मकं जगत्" – यह निरन्तर गतिशील समस्त ब्रह्माण्ड अग्नि-स्वरूप तथा सोम-स्वरूप है। वैदिक वाङ्मय में इन दोनों शब्दों के प्रसङ्ग के अनुसार अलग-अलग अर्थ हैं। डॉ० कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार "अग्नि + सोम= जगत्, इस प्रक्रिया को स्वीकार किया गया है । प्रत्येक परमाणु (Atom) में ३ तत्त्व होते हैं ।१. धनात्मक (Positive), २. ऋणात्मक (Negative), ३. उदासीन (Neutral) । इन्हें हम वैज्ञानिक भाषा में Proton (प्रोटॉन), Electron (इलेक्ट्रॉन) और Neutron (न्यूट्रॉन) कहते हैं । बृहत् जाबाल उपनिषद् में अग्नीषोम का विस्तृत विवरण दिया गया है । धनात्मक अग्नितत्त्व प्रेरक, संचालक और गतिदाता है । यह ऊर्जा देकर प्रेरणा देता है । सोम ऋणात्मक तत्त्व है, अतएव Electron में गतिशीलता है । अग्नि या ऊर्जा के प्रभाव से सोम में सक्रियता आती है । इसी से सृष्टि प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । Neutron या Neutral स्थिति स्थापक या आधार का काम करता है । सोमतत्त्व के बिना सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ होना असंभव है । उपनिषद् का कथन है कि सूर्य और अग्नि धनात्मक (Positive) हैं तथा सोम और वायु ऋणात्मक (Negative) हैं । धनात्मक को तेज और ऋणात्मक को रस नाम भी दिया गया है । इस प्रकार तेज और रस के मेल से सृष्टि-रचना होती है – 'तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतत् चराचरम्' (बृ० जा० २.३)।"[१६] अथर्ववेद के अनुसार जल में अग्नि (Oxygen) और सोम (Hydrogen) दोनों हैं – **'अग्नीषोमौ बिभ्रत्यापु इत्ताः'** (अथर्व० ३.१३.५)।

परमात्मा समर्पित व्यक्तित्व वाले इस उपासक को अग्निषोमात्मक विज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं। सामान्य जीवन में भी तेजस्विता और सौम्यता का सुवर्ण संयोग ही जीवन को उदात्त एवं सुखमय बनाता है, अतः 'अग्नि' और 'सोम' दोनों तत्त्वों की प्राप्ति तथा इनका समुचित उपयोग आवश्यक है।

६. **दैव्याय**[१७] , **कर्मणे**[१८] , **शुन्धध्वम्**[१९] ,

---

१५. अग्निश्च सोमश्चाग्नीषोमौ ताभ्यामग्नीषोमाभ्याम्, द्वन्द्वसमासः। 'ईदग्नेः सामवरुणयोः' (अष्टा० ६.३.२७), 'अग्नेः स्तुत्-स्तोम-सोमाः' (अष्टा० ८.३.८२) इति सूत्राभ्यामीत्वं षत्वं च। 'देवताद्वन्द्वे च' इत्युभयपदप्रकृतिस्वरः। 'अग्नि'-शब्दः प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः, 'सोम'-शब्दः 'नामन्-सीमन्-व्योमन्-रोमन्-लोमन्-पाप्मन्-ध्यामन्' (उणा० ४.१५०) इति सूत्रेण मनिन्-प्रत्ययान्तो निपातितः, नित्वाच्च 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इति सूत्रेणाद्युदात्तत्वे, ततश्च 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा० ८.४.६६) इति स्वरितत्वे, चतुर्थीबहुवचने 'अग्नीषोमाभ्याम्' इति मन्त्रगतं समस्तपदम्। अत्रादौ उदात्तपूर्वस्थः अग्नेरकारः 'उदात्त-स्वरितपरस्य सन्नतरः' (अष्टा० १.२.४०) इति सूत्रेण सन्नतर-स्वरत्वं (सन्नतरस्वर एव नारदीयशिक्षायां 'निघात' इति नाम्ना पञ्चमः स्वरः परिगणितः) लभते, स च स्पष्टतायै सर्वत्रैव संबद्धाक्षरमधः अर्धचन्द्राकार इव वक्ररेखया प्रदर्शितः, उदात्ताक्षरेऽपि 'उ' इति लिखितः – 'अग्नीषोमाभ्याम्'॥

१६. द्र० – वेदों में विज्ञान (डॉ० कपिलदेव द्विवेदी) पृष्ठ- २७॥

१७. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'क्विप् च' (अष्टा० ३.२.७६) इति क्विप्, सर्वापहारिलोपः. धातुस्वरेणाद्युदात्तत्वम्– 'दिव्' इति प्रातिपदिकम्॥ दिवि भवमित्यर्थे 'तत्र भवः' (अष्टा० ३.२.७६) इति यत्-प्रत्ययः, 'तित्स्वरितम्' (अष्टा० ६.१.१८५) इति यत्-प्रत्ययस्यादिस्वरः स्वरितः – 'दिव्य'॥ ततः 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (अष्टा० ५.१.१२४) इति ष्यञ् । ञित्वात् 'तद्धितेष्वचामादेः' (अष्टा० ७.२.११७) इत्यादेर्वृद्धिः, 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वे चतुर्थ्यैकवचने, उदात्तादुत्तरस्य स्वरितत्वम्, ततः एकश्रुतित्वं च– 'दैव्याय' ॥

देवयुज्यायै[२०] – उपासक अपनी वैचारिक पवित्रता को निन्तर सुस्थिर करता रहे। 'दैव्याय, कर्मणे' दिव्य अर्थात् श्रेष्ठ कर्म, जिसे करने के लिए यजुर्वेद का आद्यन्त उपदेश है, जिसकी व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राह्मण उसी श्रेष्ठ कर्म को 'यज्ञ' की संज्ञा देता है। वैचारिक पवित्रता क्षीण होने पर व्यक्ति का समर्पण भाव नष्ट हो जाता है और सौम्यता के स्थान पर वह भयंकर अहंकार से आविष्ट हो जाता है। वह स्वयं को ही सर्वज्ञ मान कर विद्वानों की अवहेलना करता है। परिणाम स्वरूप विद्वानों की संगति से दूर रहने लगता है और उसके ज्ञान के विकास के द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं। इसीलिए कहा है – 'देवयुज्यायै' विद्वानों की संगति करते रहने के लिए भी अपनी वैचारिक पवित्रता सुस्थिर करना आवश्यक है, जिससे उपासक निरहंकार होकर जिज्ञासु भाव से उनकी संगति में रहकर अपने ज्ञान का परिष्कार करता रहे।

७. यत्[२१]**, वः**[२२]**, अशुद्धाः**[२३]**, पराजिघ्नुः**[२४] – उपासक की वैचारिक पवित्रता का निन्तर सुस्थिर करना

---

१८. डुकृञ् करणे धातोः कर्मणि 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' (उणादि० ४.१४५) इति सूत्रेण मनिन् प्रत्यये 'कर्मन्' शब्दस्य निष्पत्तिः। चतुर्थीविभक्त्यैकवचने 'ङे' प्रत्ययः, स चानुदात्तः, 'मनिन्' प्रत्ययस्य नित्त्वात् 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) 'कर्मणे' इति पदमाद्युदात्तम्॥

१९. शुन्ध् शुद्धौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः कर्मवाच्ये लोटि मध्यमपुरुष-बहुवचने ध्वम्-प्रत्यये– शुन्ध् + ध्वम् । 'सार्वधातुके यक् '(अष्टा० ३.१.६७) इति यकि प्राप्ते छन्दसि विकरणव्यत्ययेन शब्विकरणमेव– शुन्ध् + शप् +ध्वम् । 'टित आत्मनेपदानां टेरे '(अष्टा० ३.४.७९) इति टेरेत्वे– शुन्ध् + अ + ध्वे । 'सवाभ्यां वामौ '(अष्टा० ३.४.९१) इत्यम्-भावः– शुन्ध् + अ + ध्वम्। कित्-विकरणाभावे 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति '(अष्टा० ६.४.२४) इति सूत्रेण प्राप्तस्योपधास्थ-नलोपस्याप्यप्राप्तिः– शुन्धध्वम्। प्रत्ययस्वरेण 'ध्वम्'-उदात्तः, एकमुदात्तं परिवर्ज्य 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (अष्टा० ६.१.१५७) इति शिष्टानामनुदात्तत्वम् – 'शुन्धध्वम्', ततः 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) इति 'न्धु'-निघातः /सन्नतरः – 'शुन्धुध्वम्'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'शुन्धध्वम्' ॥

२०. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (अष्टा० ३.१.१३४) इति 'अच्' प्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् – देवः॥ देवशब्द उपपदे 'यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु'(भ्वादिगणः उभयपदी) इति धातोः 'छन्दसि निष्टक्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि' (अष्टा० ३.१.१२३) इति निपातनाद्यप्रत्ययः, स्त्रीलिङ्गनिपातनञ्च, प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः – 'देवयुज्या'॥ देवानां यज्या देवयज्या, तस्यै देवयज्यायै। षष्ठीसमासे समासान्तोदात्तत्वम्, उपपदसमासे तु 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अष्टा० ६.२.१३९) इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरे प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वं ज्ञातव्यम्– 'देवयुज्या'॥

२१. यद्– इति प्रातिपदिकात् नपुंसके प्रथमैकवचने सु-प्रत्ययः, 'स्वमोर्नपुंसकात् ' (अष्टा० ७.१.२३) इति सुलोपः, 'फिषोन्त उदात्तः' (फिट्०–१) इति प्रातिपदिक-स्वरेणान्तोदात्तः– 'यद्'। 'वाऽवसाने ' (अष्टा ८.४.५६) इति विकल्पेनावसाने चर्त्वम्– 'यत्'॥

२२. युष्मदः षष्ठीबहुवचनस्थस्य 'युष्माकम्' इत्यस्य स्थाने प्रयुक्तम्, 'बहुवचनस्य वस्नसौ' (अष्टा० ८.१.२४), 'अनुदात्तं सर्वमापादादौ'(अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्वमनुवर्तते॥

२३. न शुद्धा अशुद्धाः। नञ्–उपपदम्, 'चादयोऽसत्त्वे' (अष्टा० १.४.५७), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्। शुन्ध शुद्धौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) अथवा शुध शौचे (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोर्निष्ठायां क्त-प्रत्ययः। 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति '(अष्टा० ६.४.२४) इति सूत्रेण उपधायाः नकारस्य लोपः– शुध्+त। 'झलां जश् झशि '(अष्टा० ८.४.५३) इति धकारस्य जश्त्वेन दकारादेशः– शुद्+त। 'झषस्तथोर्धोऽधः' (अष्टा० ८.४.४०) इति तकारस्य धकारः, पुंसि प्रथमपुरुषैकवचने – 'शुद्धः'। प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'शुद्धः'॥ 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः'(अष्टा० ६.२.२) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरेणाद्युदात्तः, ततः उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्तरस्यैकश्रुत्यं च प्रथमाबहुवचने –'अशुद्धाः'॥

२४. हन् हिंसागत्योः (अदादिगणः परस्मैपदी) इति

इसलिए भी आवश्यक है कि सभी प्रकार के अशुभ गुण पल्लवित होने से पूर्व ही विनष्ट होते रहें।

८. इदम्[२५], वः, तत्[२६], शुन्धामि[२७] – मन्त्र के अन्तिम वाक्य से परमात्मा अपना पितृभाव प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि तुम सर्वत्र सर्वथा उन्नति करते रहो, इसीलिए मैं तुम्हें और भी अधिक पवित्र बने रहने के लिए प्रेरित करता हूँ।

९. मन्त्र का निहितार्थ– मन्त्र में सृष्टिचक्र में जल-निर्माण की प्रक्रिया, अग्नितत्त्व और सोमतत्त्व की जीवन में समान आवश्यकता का उपदेश तथा सभी प्रकार की वास्तविक उन्नति के आधार 'जीवन में सर्वथा पवित्रभाव अर्थात् सत्यनिष्ठ बने रहना' पर बल दिया गया है।

१०. महर्षि का भावार्थ – महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रस्तुत मन्त्र के भावार्थ में इन्हीं बिन्दुओं को इस प्रकार रेखाङ्कित किया है – "इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य को इसलिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश कर के उनके रस और जल को छिन्न-भिन्न कर दें, जिस से वे वायुमण्डल में जाकर फिर वहां से पृथिवी पर आके सब को सुख और शुद्धि करने वाले हों। इस से मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा श्रेष्ठ सुख बढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये। जिस से इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उस में शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें। इसी प्रयोजन

धातोः लिट्-लकारे प्रथमपुरुषबहुवचने झि-प्रत्ययः – हन् + झि। 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः'(अष्टा० ३.४.८२) इति झि-स्थाने उस्-आदेशः– हन् + उस्।'लिटि धातोरनभ्यासस्य '(अष्टा० ६.१.८) इति हन्-धातोर्द्वित्वे– हन् + हन् + उस्। 'गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि'(अष्टा० ६.४.९८) इति हन्-धातोरुपधायाः अकास्यलोपः– हन् + ह् + उस्।'पूर्वोभ्यासः '(अष्टा० ६.१.४) , 'हलादिः शेषः'(अष्टा० ७.४.६०) इति अभ्यासस्य प्रथम-स्थाने विद्यमानस्य व्यञ्जनस्य शिष्टत्वात्–ह + ह् + उस्। 'कुहोश्चुः '(अष्टा० ७.४.६२) इति अभ्यासस्य चवर्गादेशः –झ + ह् + उस् । 'अभ्यासाच्च '(अष्टा० ७.३.५५) इति अभ्यासादुत्तरस्य हन्-धातोर्हकारस्य कवर्गादेशः– झ + घ्न् + उस्।'अभ्यासे चर्च'(अष्टा० ८.४.५४) इति अभ्यासस्य चर्त्वम्– ज + घ्न् + उस्। रुत्वे विसर्गे च – 'जघ्नुः'। उस्-प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः– 'जघ्नुः'॥ 'परा' इत्यस्य 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्– 'परा'।'गतिश्च' (अष्टा० १.४.६०) इति गतिसंज्ञा। 'उदात्तगतिमता च तिङा' (अष्टा० २.२.१८ भा० वा०) इति समासः, 'समासस्य' (अष्टा० ६.१.२१७) इत्यन्तोदात्तः– 'पराजघ्नुः'॥ मन्त्रेऽस्मिन् संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तस्य प्राप्तौ 'यद्वृत्तान्नित्यं' (अष्टा० ८.१.२८) इति सूत्रेण निषेधे, 'तिङि चोदात्तवति' (अष्टा० ८.१.७१) इति सूत्रेण गतिसंज्ञकस्य 'परा' इत्यस्य सर्वानुदात्तत्वं भवति– 'परा', स च स्वरितोत्तरात् प्रचयत्वं लभते – "यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि"॥

२५. इदि परमैश्वर्ये (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'इन्देः कमिन्नलोपश्च' (उणा० ४.१५६) इति कमिन्-प्रत्ययः, इन्देर्नलोपः, नित्त्वाच्च 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तः प्रातिपदिकः – इदम्। ततो नपुंसके प्रथमैकवचने 'स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाङ्ङ्योस्सुप्' (अष्टा० ४.१.२) इति सु-प्रत्ययः, अनुदात्तश्च, 'स्वमोर्नपुंसकात्' (अष्टा० ७.१.२३) इति सु-प्रत्ययस्य लुक्, प्रातिपदिकस्वरेणैव चाद्युदात्तः, तदुत्तरस्य स्वरितश्च – 'इदम्'॥

२६. तद्– इति प्रातिपदिकात् नपुंसके प्रथमैकवचने सु-प्रत्ययः, 'स्वमोर्नपुंसकात् ' (अष्टा० ७.१.२३) इति सुलोपः, 'फिषोन्त उदात्तः' (फिट्०–१) इति प्रातिपदिक-स्वरेणान्तोदात्तः– 'तद्'। 'वाऽवसाने ' (अष्टा ८.४.५६) इति विकल्पेनावसाने चर्त्वम्– 'तत्'॥

२७. शुन्ध् शुद्धौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) इति धातोर्लटि उत्तमपुरुषैकवचने मिप्-शपौ, तौ चानुदात्तौ, 'अतो दीर्घो यञि' (अष्टा० ७.३.१०१) इति दीर्घे, धातुस्वरेणाद्युदात्तत्वम्, ततः उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्तरस्यैकश्रुत्यं च– 'शुन्धामि'। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'शुन्धामि' ॥

के लिये मैं ईश्वर तुम सबों को उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मों को नित्य किया करो तथा उक्त रीति से वायु, अग्नि और जल के गुणों को शिल्पक्रिया में युक्त करके अनेक यान आदि यन्त्रकला बना कर अपने पुरुषार्थ से सदैव सुखयुक्त होओ॥"[२८] □

---

२८. द्र० –"अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वरेणाग्निसूर्यावेतदर्थौ रचितौ यदिमौ सर्वेषां पदार्थानां मध्ये प्रविष्टौ जलौषधिरसान् छित्त्वा, वायुं प्राप्य मेघमण्डलं गत्वाऽऽगत्य च शुद्धिसुखकारका भवेयुस्तस्मान्मनुष्यैरुत्तमसुखलाभायाग्नौ सुगन्ध्यादिपदार्थानां होमेन वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा दिव्यसुखानामुत्पादनाय संप्रीत्या नित्यं यज्ञः करणीयः। यतः सर्वे दोषा नष्टा भूत्वाऽस्मिन् विश्वे सततं शुद्धा गुणाः प्रकाशिता भवेयुः। एतदर्थमहमीश्वर इदं शोधनमादिशामि यूयं परोपकारार्थानि शुद्धानि कर्माणि नित्यं कुरुतेति। एवं रीत्यैव वाय्वग्निजलगुणग्रहणप्रयोजनाभ्यां शिल्पविद्ययाऽनेकानि यानानि यन्त्रकलाश्च रचयित्वा पुरुषार्थेन सदैव सुखिनो भवतेति॥" –यजु० १.१३ पर महर्षि दयानन्द के भाष्य में संस्कृत भावार्थ॥

आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर

स्थान – ऋषि उद्यान, अजमेर, राजस्थान

आर्य वीर दल आवासीय शिविर – दिनांक – २६ मई से ०१ जून २०२४ तक

आर्य वीरांगना दल आवासीय शिविर – दिनांक – ०२ जून से ०८ जून २०२४ तक

नमस्ते जी। आप सभी को सूचित किया जाता है कि आर्य वीर व आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर ऋषि उद्यान अजमेर में आयोजित किया जाएगा ।

शिविर की विशेषता – १. शिविर आर्यवीर दल अजमेर एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित होगा । इसमें राष्ट्रीय स्तर के शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाएगा।

२. शिविर में सहयोग राशि ८००/– रुपये रहेगी।

३. सभी को गणवेश में रहना अनिवार्य होगा । गणवेश यदि उपलब्ध नहीं है तो शिविर स्थल से क्रय कर सकते हैं।

४. इस शिविर में सैनिक शिक्षा का विशेष प्रशिक्षण होगा।

५. आर्य वीर शिविर स्थल पर २६ मई २०२४ व आर्य वीरांगना शिविर में ०२ जून २०२४ को सायंकाल ५ बजे तक आना अनिवार्य है।

६. शिविर में भाग लेने वाले आर्य वीर अपनी आने की सूचना **श्री नन्दकिशोर आर्य** के चलभाष– ९३१४३९४४२१ व **श्री कमलेश पुरोहित** को चलभाष संख्या ९८२८१८०१९७ एवं आर्य वीरांगना की सूचना **श्रीमती सुलक्षणा शर्मा** को चलभाष संख्या ९४१३६९५४८९ पर अवश्य देवें । धन्यवाद ।

विश्वास पारीक-जिला संचालक-९४६००१६५९०

आर्य वीर दल एवं आर्य वीरांगना दल अजमेर

परोपकारिणी सभा, अजमेर

कविता

जीवन कर्मफलों का योग

- डॉ. रामवीर

अच्छे बुरे धनी या निर्धन
जितने भी हैं जग में लोग,
अपने भले बुरे कर्मों के
फल का ही करते हैं भोग।

कोई स्वस्थ देह वाला है
किसी को पीड़ित करते रोग,
कोई इष्ट जनों संग रहता
कोई झेलता दु:खद वियोग।

कोई रमा दुनियादारी में
कोई धारण करता जोग,
सब कर्मों का ही प्रभाव है
यह है मात्र नहीं संयोग।

यूं तो सभी जीविका हेतु
करते रहते हैं उ द्योग,
किन्तु प्राप्ति पृथक् पृथक् है
कह लो इसे भाग्य का भोग।

अगर अभीप्सित है जीवन में
सात्त्विक सुख सुविधा उपभोग,
तो अन्तस् में बनाए रखना
उचित अनुचित कर्मों का बोध।

अनुचित कर्मों के द्वारा जो
प्राप्त होते आमोद प्रमोद,
वे परिणाम में दु:खदायी हैं
खतरनाक उनका उपयोग।

जीवन-व्याख्या हेतु हुआ है
भिन्न भिन्न शब्दों का प्रयोग,
किन्तु सही लगता है कहना
जीवन कर्मफलों का योग।

86, सैक्टर 46,
फरीदाबाद (हरि.)
मो. 9911268186

पं. रविदत्त जी वैद्य की डायरी से

०१-०१-१९८२

राजस्थान प्रदेश जनसंघ के प्रदेश अध्यक्ष

प्रधानों के चुनाव हो चुके। इतना बड़ा व्यय सैंकड़ों रुपये एक-एक मत पर खर्च केवल यह बताता है कि बिना हिसाब का रुपया बहुत है और इसका उपयोग बिना किसी हिचक कर सकने का ही यह परिणाम है। जीते हुए व्यक्ति को भी अपना दल बदलने में लाभ का दृष्टिकोण सामने है। भारतीय राजनीति का दुर्भाग्य पूर्ण पक्ष है, अज्ञान और अभाव से ग्रस्त मतदाता। यह दूर कब तक होगा, कहा ही नहीं जा सकता।

- ओम् मुनि, प्रधान - परोपकारिणी सभा

वेद पर्यटन

पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय

पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय आर्यजगत् के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी लेखनी से प्रसूत ज्ञानधारा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी लेखन के समय थी। परोपकारी साभार इसे पुनः प्रकाशित कर रही है

-सम्पादक

राष्ट्रीयता-

विश्व बन्धुत्व तथा प्राणीमात्र से प्रेमपूर्वक व्यवहार की शिक्षा वेदों में दी गई है। परन्तु प्रबन्ध को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीयता का उपदेश दिया गया है।

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।[1]

(पुरोहिताः=पुरः हिताः[2]) सब के आगे रखे हुए अर्थात् नेता, (वयं) हम लोग, (राष्ट्र) राष्ट्र में, (जागृयाम) जागते रहें।

प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि राष्ट्र की उन्नति में सावधान रहे। राष्ट्र का संचालन सुन्दर रीति से करे और किसी प्रकार शिथिलता न आने दे। अतः राष्ट्र के प्रबन्ध पर सब का ध्यान जाना चाहिये और उनको चाहिये कि एक बुद्धिमान् शक्तिशाली पुरुष को अपना प्रमुख चुन लें।

इमे देवाऽअसपत्नः सुवध्वं महते क्षत्राय इममुष्य महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्याय इन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।[3]

जिसको प्रमुख चुनना हो उसके चुनने वालों के लिए यह उपदेश है।

(देवाः) हे विद्वान् लोगो, (इम) इस श्रेष्ठ पुरुष को, (असपत्नं सुवध्वम्) शत्रु-रहित करो। अर्थात् तुम में से कोई इसके साथ शत्रुता का व्यवहार न करे, (महते क्षत्राय) जिससे वह अधिक से अधिक रक्षा कर सके (महते ज्यैष्ठ्याय) और सब लोग गौरवशाली हों, (महते जानराज्याय) यह राज एक का न होकर सभी का शामिल हो। जनता का राज्य हो। एक पुरुष मनमानी न करने पावे, (इन्द्रस्य इन्द्रियाय) राज-शक्ति की समृद्धि हो, (इमम् अमुष्य पुत्रं, अमुष्यै पुत्रम् सुवध्वम्) अमुक पिता और अमुक माता के उस योग्य पुरुष को तुम चुनो, (विशः) हे लोगो, (एषः वः अमी राजा) यह तुम्हारा राजा है, (सोमः अस्माकं ब्राह्मणानां राजा) यह मृदु स्वभाव वाला पुरुष हम ब्राह्मणों का राजा है। इस मन्त्र में इतनी बातें दिखाई गई हैं-

(१) एक पुरुष का मनमाना राज नहीं होना चाहिये।

(२) ब्राह्मणों अर्थात् समाज के विद्वान्, पक्षपातशून्य निःस्वार्थी लोगों को चाहिये कि ऐसे को राजा चुनें जो सौम्य स्वभाव का हो और प्रजा के पालन में कठोरता का व्यवहार न करे।

(३) राज्य प्रबन्ध का भार जनता के ऊपर हो। जनराज हो। इसी के लिए 'जान-राज्याय' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(४) 'राजा' शब्द 'राजृ दीप्तौ' धातु से निकला है। राजा का अर्थ है प्रकाशक या प्रकाश का करने वाला। जैसे सूर्य जब चमकता है तो सभी पदार्थों को प्रकाशित कर देता है और हर पदार्थ के गुण देदीप्यमान हो जाते हैं इसी प्रकार अच्छे राजा के राज में सभी पुरुष और स्त्रियों को गुणी होना चाहिये।

राजा को चाहिये कि प्रजाजनों के साथ दुर्व्यवहार न करें। ऋग्वेद में इस विषय का बहुत अच्छा मन्त्र है-

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः।।[4]

([5]इन्द्र) हे राजा, (नः किं जिघांससि) हमको क्यों खा डालना चाहता है, (मरुतः) प्रजा के लोग (तव

भ्रातर:) तेरे, भाई हैं, "त्वया भोगप्रदानेन भरणीया:" (सायण भाष्य)। अर्थात् तेरा कर्त्तव्य है कि तू इनका पालन पोषण करे, (तेभि: साधुया कल्पस्व) इनके साथ अच्छा व्यवहार करे, (न: समरणे मा वधी:) जैसे युद्ध में वैरी को मारते हैं इस प्रकार हमारे साथ व्यवहार मत कर।

प्राय: यह देखा गया है कि जिसको लोग राजा चुनते हैं, वह शक्ति प्राप्त करके निरंकुश हो जाता है। ऐसे के लिए ही वेद की यह चेतावनी है।

मातृभूमि की सेवा हर नर-नारी को करनी चाहिये क्योंकि इसी से हमारा पालन-पोषण होता है। मातृभूमि की प्रशंसा में अथर्ववेद में बारहवें काण्ड में एक भूमि-सूक्त है जिसका कुछ अंश यहाँ देते हैं-

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं
पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।[६]

(यां विश्वदानीं भूमि पृथिवीं) जिस सर्वप्रकार के सुखों को देने वाली मातृभूमि या पृथिवी माता की. (अस्वप्ना: देवा: अप्रमादं रक्षन्ति) जागते हुए सावधान विद्वान् बिना प्रमाद के रक्षा करते हैं, (सा) वह पृथ्वीमाता, (न:) हमको, (प्रियं मधु दुहं) प्रिय मीठे दूध को, (अथो वर्चसा) और तेज से, (उक्षतु) सींचती है।

तात्पर्य यह है कि राष्ट्र का निर्माण बड़ी कठिनाई से होता है। आलसी और प्रमादी जन शीघ्र ही दूसरों के दास हो जाते हैं।

सत्यं बृहत् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं
लोकं पृथिवी न: कृणोतु।।[७]

(पृथिवीं धारयन्ति) पृथिवी अर्थात् राष्ट्र की रक्षा इतनी चीजों से होती है, (सत्यं बृहत्) बड़े सत्य से। अर्थात् जिस देश के मनुष्य असत्यवादी होते हैं, वह राज ठीक नहीं रह सकता, (उग्रं ऋतम्) कड़ा व्रत। अर्थात् देश के लोगों को कठिन व्रत का पालन करना चाहिये, (दीक्षा) शुभ कामों की योग्यता, (तप:) कठिनाई सहन करने की शक्ति, विलासी जन शीघ्र परतन्त्र हो जाते हैं, (ब्रह्म) विद्या, (यज्ञ:) श्रेष्ठ कर्म, (सा पृथिवी) अर्थात् ऐसा देश जिसमें सत्यवान्, व्रतधारी आदि लोग रहते हैं, (न: भूतस्य भव्यस्य पत्नी) हमारे भूत और भविष्यत् का पालक है, (उरु लोक न: कृणोतु) वह हमारे परलोक को भी साध सकेगा।

तात्पर्य यह है कि देशवासियों को सत्यनिष्ठ, व्रतधारी, अप्रमादी और तपस्वी होना चाहिये। इससे राज की उन्नति होगी। धन, धान्य तथा शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति होगी और उनका लोक सुधरेगा तो परलोक भी सुधरेगा। जो इस जन्म में स्वार्थी विलासी, अज्ञानी अथवा प्रमादी हैं वह दूसरे जन्म में भी दास ही उत्पन्न होगा और उसको मोक्ष की प्राप्ति न होगी।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं
वच: पृथिवी नो दधातु।।[८]

(यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे) जिस राष्ट्र को हमारे पूर्वजों ने पिछले कालों में बनाया है। (यस्यां देवा: असुरान् अभ्यवर्तयन्) जिस राष्ट्र में विद्वानों ने दुष्ट लोगों को पराजित किया है, ऐसा हमारा राष्ट्र (गवां, अश्वानां, वयस: च विष्ठा) गायों, घोड़ों, पक्षियों आदि का "विष्ठा" (वि+स्था) विशेष निवास स्थान है। (पृथिवी न भगं वर्च: दधातु) ऐसी मातृभूमि अथवा ऐसा राष्ट्र हमको तेजस्वी बनावे।

राष्ट्र सुगमता से नहीं बनता। राष्ट्र निर्माण के लिए देशवासियों को त्याग और बलिदान देने होते हैं। भारत का महाभारत से इधर का इतिहास देखिये, दूसरे देशों का इतिहास पढ़िये। सभी से वेद मन्त्र में दी हुई इस सत्यता की साक्षी मिलेगी।

राष्ट्र गीत-

एक आदर्श राष्ट्र में क्या-क्या वस्तुएँ होनी चाहियें इसका उत्तम वर्णन यजुर्वेद अध्याय २२ के २२वें मन्त्र में किया गया है। इसको भूमण्डल के सभी राष्ट्र राष्ट्र-गीत मान कर गा सकते हैं, क्योंकि इसमें दी हुई बातें सब युगों और सब देशों में लाभकारी सिद्ध होंगी। वह गीत यह है-

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् दोग्धी धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्।।[९]

(१) हे ईश्वर हमारा नेता ब्राह्मण ब्रह्मवर्चसी अर्थात् उत्कृष्ट आत्मज्ञान का ज्ञाता हो। यह न स्वार्थी हो, न लोभी, न लौकिक निकृष्ट कामनाओं में फंसा हुआ। जिससे वह जनता के समक्ष उच्च आदर्श रख सके।

(२) राष्ट्र में क्षत्रिय लोग शूरवीर, हथियार बन्द, तन्दुरुस्त और शत्रु को परास्त करने वाले महारथी होवें। जिससे कोई हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करने का इरादा न कर सके।

(३) गाय दूध देने वाली हों।

(४) बैल बोझा ढोने में शक्तिशाली हों।

(५) घोड़े तेज हों।

(६) स्त्रियाँ स्वस्थ और रूपवती हों। 'पुर' अर्थात् शरीर को भलीभाँति धारण कर सकें। कोमल, निर्बल, और रोगी न हों। जिससे सन्तान हृष्ट-पुष्ट हो।

(७) रथेष्ठाः (रथे+स्था) सैनिक लोग विजय की इच्छा रखने वाले हों। वह जब युद्ध में जायें तो विजय की कामना करते हुए, निःस्वार्थ भाव से लड़ने वाले और विजयी होवें।

(८) (अस्य यजमानस्य युवा वीरः सभेयो जायतां) इस यजमान के युवा पुत्र सभाओं में भाग लेने के योग्य, गुणवान् हों। कोई यह न कह सके कि सन्तान अयोग्य है।

(९) (निकामे निकामे नः पर्जन्यः वर्षतु) जब जब हम को वर्षा की आवश्यकता हो, ठीक ठीक ऋतु पर हो। जिससे अतिवृष्टि और अनावृष्टि का दुःख न हो।

(१०) (फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां) हमारी खेती फलवती अर्थात् बहुतायत से अन्न उपजाने वाली हो।

(११) (योगक्षेमो नः कल्पताम्) जो आवश्यक वस्तु न हो उसका प्राप्त करना 'योग' कहलाता है और जो प्राप्त हो जाय उसकी रक्षा 'क्षेम' कहलाता है। अर्थात् हे ईश्वर हमारे राष्ट्र में किसी चीज की कमी न रहे, सब आवश्यक पदार्थों का उत्पादन भी ठीक हो और उत्पन्न हुई वस्तुओं से लोगों को पूरा-पूरा लाभ भी हो। हर वस्तु का मितव्यय हो, अतिव्यय न हो।

इन ११ वस्तुओं की हर राष्ट्र को आवश्यकता होती है। यदि राष्ट्र की जनता इस गीत को ध्यान में रखे और इन पदार्थों को जुटाने का यत्न करे तो अवश्य ही जनता का कल्याण हो सकता है।[१०]

समाज संगठन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अकेला रहना पसन्द नहीं करता। फिर भी सब मनुष्य एक से नहीं होते। हर एक के गुण, हर एक की प्रवृत्तियाँ, हर एक की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इतनी भिन्नता होते हुए प्रश्न यह है कि सामाजिक संगठन कैसे हो? वेदों में वर्गीकरण का आधार गुण, कर्म, और स्वभाव माना गया है। यजुर्वेद अध्याय ३१ का ग्यारहवाँ मन्त्र एक प्रसिद्ध मन्त्र है, प्रायः सभी वेद पढ़ने वाले इस मन्त्र को जानते हैं, परन्तु इसका आशय समझने में प्रायः बहुत भ्रान्ति हुई है। मन्त्र यह है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।[११]

अर्थ- इस समाजरूपी शरीर का मुँह ब्राह्मण है, बाहू क्षत्रिय हैं, जंघाएं वैश्य हैं और पैर शूद्र हैं। संगठित समाज के लिए शरीर से अच्छी कोई उपमा नहीं है। शरीर में तीन बातें पाई जाती हैं-

(१) सब अंग भिन्न-भिन्न हैं। आँख अलग, कान अलग, पेट अलग, हाथ अलग, पैर अलग। इसके रूप भिन्न, गुण भिन्न कार्य भिन्न।

(२) ये सब अंग एक दूसरे के सहयोगी हैं, भिन्न होते हुए भी परस्पर बँधे हैं, संगठित हैं, न अलग हो सकते हैं, न विरोध कर सकते हैं। कोमल जीभ और कड़े दांत दोनों साथ रहते और एक-दूसरे के सहायक और पूरक हैं।

(३) इन सब के सहयोग से ही शरीर की पुष्टि होती है। सहयोग जीवन का चिह्न भी है और हेतु भी। असहयोग मृत्यु का कारण भी है और चिह्न भी। स्वस्थ शरीर वह है जिसके अंग भिन्न होते हुए भी सहयोगी है। असहयोग का आरम्भ ही रोग का सूचक है और मृत्यु का वाहक है।

इस अत्यन्त उपयुक्त उपमापूर्ण मन्त्र को समझने में लोगों ने यह भूल की कि पहली बात पर तो दृष्टि डाली और दूसरी और तीसरी बात को भुला दिया। इसलिए इस आधार पर हिन्दुओं में जो वर्गीकरण हुआ उसने भिन्नता और कलह को उत्पन्न किया। संगठन को तोड़ दिया, ब्राह्मणों और क्षत्रियों में लड़ाइयाँ हुई। शूद्रों और वैश्यों में कलह हुई, ब्राह्मणों की उपजातियों में स्पर्धा और ईर्ष्या हुई। हिन्दू जाति हजारों ऐसे वर्गों में विभक्त हो गई जिन्होंने समस्त समाज को प्रभावित कर दिया। यह उपमा उपमेय के लक्षण को न समझने के कारण थी। वस्तुत: वेद मन्त्र में जो नियम दिया गया है वह विश्वव्यापी है। अर्थात् समाज के चार मोटे-मोटे भाग होने चाहियें-

(१) ज्ञान की वृद्धि करने वाले ब्राह्मण जो मुख के समान हैं।

(२) बलवान् क्षत्रिय बाहू के समान।

(३) उद्योगी वैश्य जाँघों के समान।

(४) अन्य साधारण श्रमजीवी शूद्र पैर के समान।

इसको वैदिक भाषा में चार वर्ण कहते हैं। यहाँ वर्ण का अर्थ रङ्ग नहीं है[१२] अपितु 'वृ वरणे' धातु से। वर्ण वह कर्त्तव्य है जो मनुष्य समाज सेवा के लिए चुन लेता है। यह वर्ण किसी पर बलात् थोपा नहीं जाता। मनुष्य इसको स्वयं चुनता है। चुनने में रुचि और शक्ति दोनों ही देखनी पड़ती है, जिस मनुष्य का मस्तिष्क अच्छा है और जिसे ज्ञान-वृद्धि में रुचि है वह अनेक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा आविष्कार करके समाज की समृद्धि में भाग लेगा। ऐसा मनुष्य ब्राह्मण कहलायेगा। जो शरीर में बलिष्ठ है वह समाज की गुण्डों से रक्षा करेगा, यह क्षत्रिय है। जो धन-धान्य उत्पन्न करेगा और कला कौशल की उन्नति करेगा वह वैश्य है। जो सेवा ही कर सकता है और तीनों वर्णों को उनके काम में सहायता दे सकता है वह शूद्र है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पैतृक जन्म पर आधारित नहीं है। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल इनका वर्गीकरण हुआ है, भेदभाव के लिए नहीं। अपितु सहयोग के लिए। ये एक-दूसरे के पूरक है।

समाज के चार वर्ग बड़े-बड़े हैं, परन्तु जब समाज बड़ा होता है तो हर वर्ग में विशेषता को आवश्यकता पड़ती है। एक छोटे से गाँव में एक ही दुकान होती है। उसी पर नमक मिर्च भी बिकते हैं और कपड़ा भी और छोटी-छोटी दवाएं भी, परन्तु बड़े शहरों में तो हलवाई की दुकानें कई तरह की होती हैं। पूड़ी की अलग, मिठाई की अलग। कपड़ों को दुकानें भी अलग होती हैं। इसी प्रकार जब समाज में विशालता आती है तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी बीसियों वर्गों में विभक्त हो जाते हैं, परन्तु सौन्दर्य यह है कि वे सब कितने ही भिन्न क्यों न हों परस्पर पूरक होते है घातक नहीं। वेद मन्त्र में शरीर की उपमा देकर इसी पूरकत्व पर बल दिया है। इसका आधार जन्म आदि गौण नियमों पर नहीं होना

चाहिये। स्वाभाविक प्रवृत्तियों और रुचियों पर ही इसका आश्रय होना चाहिये।

सुसंगठित समाज के लिए कई चीजों की आवश्यकता होती है। जैसे धन, कृषि, उद्योग, कला-कौशल, व्यापार, यात्रा के साधन, सेना, विद्याध्ययन आदि। वेदों में इन सब विषयों पर शिक्षाएं विद्यमान हैं।

धन-

प्रश्न- वेद में धन के सम्बन्ध में क्या शिक्षा है?

उत्तर- ऋग्वेद के आरम्भ में ही एक मन्त्र धन के सम्बन्ध में है, क्योंकि बिना धन के तो जीवन नहीं हो सकता।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवततमम्।।[१३]

(अग्निना) ईश्वर के उपदेशों के द्वारा, (रयिम्) धन को (अश्नवत्) प्राप्त करे, (दिवे दिवे) हर रोज। वह धन कैसा हो? (पोषम्) पुष्टि देने वाला, (यशसम्) कीर्ति देने वाला (वीरवत्तमम्) शक्ति बढ़ाने वाला।

तात्पर्य यह है कि बेईमानी से धन मत कमाओ। ईश्वर की आज्ञा में रहकर धर्म से धन कमाओ। ऐसा धन न हो कि तुम्हारा पालन-पोषण न हो सके। ऐसा भी धन न हो कि लोग तुम को गालियाँ दें। धन से तुम्हारी कीर्ति बढ़नी चाहिये। धर्म से कमाओ और धर्म से खर्च करो। वेद में लिखा है-

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्।।[१४]

एक गृहस्थी अपने परिवार वालों से कहता है-

(सुमना वन्दमानो रमध्वं) आप अपने मनों को ठीक रखते हुए और एक दूसरे की वन्दना करते हुए आनन्द कीजिये, (मा बिभीत मत्) मुझ से मत डरिये। मैं स्वार्थी बनकर आपको कष्ट न दूँगा, क्योंकि मैं, (ऊर्ज बिभ्रत्) तेज को धारण करता हूँ, (वसुवनिः) धन कमाता हूँ. (सुमेधा) बुद्धि वाला हूँ, मेरी नीयत खराब नहीं है, (अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा गृहान् ऐमि) कोमल मित्र की आँख से मैं घर में आता हूँ। अर्थात् मैं प्रेम से रहूँगा। धन कमाऊँगा और आप सब को सुख दूँगा। जो दुष्ट और स्वार्थी हैं वे तो कमाते हैं अपने ही ऊपर खर्च कर देते हैं।

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः।।[१५]

ये घर सुखी और शक्ति वाले तथा दूध वाले हों। भरपूर हों। उत्तम वस्तुएं इनमें हों और उदार हृदय लोग हमारा स्वागत करें। जो लोग परिश्रमी उदार और प्रेम युक्त होते हैं, उन्हीं के घर धन-धान्य, दूध-दही से भरपूर होते हैं और उन्हीं को सुख होता है। कृपण, कंजूस और आलसी कभी फूलते-फलते नहीं।

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन।।[१६]

(भूरिधनाः) बहुत धन कमाने वाले, (सखायः) साथ-साथ ईश्वर की स्तुति करने वाले, (स्वादुसंमुदः) जीवन का आनन्द लेने वाले (अक्षुध्या) भूखा न मरने वाले (अतृष्णा) प्यास से न तड़पने वाले, (गृहास्त) घरवालो तुम रहो, (मा अस्मद् विभीतन) हमसे डरो मत।

यदि धनी आदमी धर्मात्मा या दानी हो तो घर के, मुहल्ले के, नगर के और देश के लोग उसका मान करते हैं।

पति जब विवाह करता है तो प्रतिज्ञा करता है कि मैं पत्नी का पालन करूँगा। जो पति यह आशा रखता है कि पत्नी भी मिले और वह विवाह के साथ बहुत सा धन, धान्य, कपड़े, आभूषण, गाड़ी मोटर, वाहन, भांड़े भी लावे उनके विरुद्ध अथर्ववेद में एक मार्मिक भर्त्सना है-

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद् वध्वोः वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णते।।[१७]

जो पति अपनी वधू के वस्त्रों से अपने अंगों को

ढकता है अर्थात् वधू के द्वारा लाये हुए सामान के उपभोग की इच्छा करता है, उसका शरीर अश्लील या दूषित हो जाता है। अत: दहेज लेने या उसको चाहने की प्रथा को वेद ने पाप बताया है।

समस्त शुद्धियों में अर्थ-शुचिता (ईमानदारी) सब से श्रेष्ठ और आवश्यक है। ऋग्वेद का यह मन्त्र देखिये-

शुची वो हव्या मरुत: शुचीनां
शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्य:।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मान:
शुचय: पावका:।।[१८]

(मरुत:) हे संसार के लोगो (व: शुचीनां) तुम शुद्ध लोगों के (शुची हव्या) सामान 'चीजें' शुद्ध हो, (शुचिभ्य: शुचिम् अध्वरं हिनोमि) मेरी प्रेरणा है कि तुम शुद्ध धर्म से कमाये हुए शुद्ध पदार्थों के साथ शुद्ध यज्ञ करो। शुद्ध सत्य और शुद्ध वैदिक नियमों के द्वारा तुम्हारे जीवन शुद्ध और दूसरों को शुद्ध करने वाले बनें। रिश्वत लेना, जुआ खेलना, बेईमानी करना किसी का माल छीन लेना यह सब अधर्म की कमाई है और यह घरों और देशों को नष्ट कर देती है।

(क्रमश:)

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अत: हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि — **प्रधान**

कन्हैयालाल आर्य — **मन्त्री**

ज्ञानसूक्त - १३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।

यह वेद चर्चा का सत्र है। हम इस समय में वेद के मन्त्रों से जीवन के लिए जो आवश्यक विचार है उनको जानने का यत्न करते हैं। नियम यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो निश्चित समझना चाहिए कि ईश्वर, ईश्वर की बनाई वस्तु सबके लिए होती है। वो गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति के लिए भी होती है और सामान्य से सामान्य व्यक्ति के लिए भी होती है। ईश्वरीय होना, यह कसौटी है कि वह सबके लिए होती है। जब वह सबके लिए है तो उसका सबसे कुछ न कुछ सम्बन्ध होना चाहिए, सबकी जरुरत होनी चाहिए। इसलिए जब हम वेद की चर्चा करते हैं तो पता लगता है कि वेद का जो मार्गदर्शन है, जो ज्ञान है वह सबके लिए किस तरह उपयोगी है। आज हम ज्ञान सूक्त के चौथे मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। इसका ऋषि बृहस्पति है और इसका देवता ज्ञान है। इस मन्त्र में ज्ञान के बारे में विशेषता बताई गयी है ज्ञान पर किसी ने प्रतिबन्ध नहीं लगाया हुआ है, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान पर कोई प्रतिबन्ध लगाए ऐसा उसका अवरोधक कोई कैसे हो सकता है? लेकिन मूल चीज है कि मेरी जो कमी है, अल्पज्ञता, अज्ञान है उसके कारण सब कुछ सामने खुली पुस्तक की तरह होने पर भी मेरी समझ में नहीं आता। वह किसी की समझ में आता है और किसी की समझ में नहीं आता। तो ज्ञान जो है, उसका प्रवाह संकुचित नहीं है, उसकी प्राप्ति संकुचित है। जो प्राप्त कर रहा है, ग्रहण कर रहा है, वहाँ ग्रहण करनेवाले के सामर्थ्य पर निर्भर करता है कि वह कितना ग्रहण कर सकता है, क्योंकि परमेश्वर की वस्तुओं का एक नियम है, क्योंकि वह असीम है, अनन्त है, नित्य है, सर्वव्यापक है इसलिए उसके द्वारा जो भी काम किया जाता है, उसमें उसके गुण, उसका व्यक्तित्व, उसका स्वरूप अवश्य होना चाहिए, क्योंकि जो चीज जिससे बनती है, जिसके द्वारा बनती है, उसमें उसके गुण, कर्म, स्वभाव पाये जाते हैं। तो यहाँ जो ज्ञान है वो परमेश्वर का है तो उसमें परमेश्वर के जो गुण है वे अवश्य उसमें पाए जाने चाहिएं। उसका प्रवाह कभी रुकने वाला नहीं होना चाहिए। किसी के अनुपयोगी होने वाला नहीं होना चाहिए। जैसा परमेश्वर नित्य है, वैसे ही उसका ज्ञान भी नित्य है। लेकिन हमें आश्चर्य तो तब होता है, जब इस संसार के अधिकांश व्यक्ति इस ज्ञान से वंचित पाए जाते हैं। जबकि साधन सबके पास बराबर है। उसके लिए वेद कहता है उत त्व पश्यन् न ददर्श वाचम् वाणी दिखाई देनी चाहिए, दिखाई देती है। पश्यन्, वाचम् न ददर्श। बड़ी विचित्र बात है। यदि यहाँ कहा होता कि कोई वस्तु पहाड़, नदी, व्यक्ति देखते हुए नहीं देख रहा है तो इन शब्दों की कुछ सार्थकता दिखाई देती। लेकिन यहाँ कहा

वाचम्, पश्यन् न ददर्श। अर्थात् वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है। उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्, वो सुनते हुए भी नहीं सुन रहा हैं। यहाँ मन में एक विचार पैदा होता है कि परमेश्वर की वाणी कैसे देखी जा सकती है? तो परमेश्वर का जो संसार है, उसका ज्ञान है। यह ज्ञान बोल रहा है, यह बता रहा है। हर वस्तु उसके बारे में कहती हुई दिखाई दे रही है। प्रश्न इतना सा है कि बोलती हुई वस्तु को क्या कोई सुनवा रहा है। जैसे हम चित्र के लिए कहते हैं कि बोलता हुआ चित्र है। तो चित्र तब ठीक होता है, जब वह स्वयं बोलता हुआ दिखाई देता हो। संसार में परमेश्वर ने जो चीज बनाई और वह कितनी अच्छी बनाई, कितनी सुन्दर बनाई कि वह बोलती हुई दिखाई देती है। संसार की वस्तुओं में जो वाणी है, चाहे वेद की स्वतन्त्र रूप से कही गयी जो वाणी है, उसको तुम देखो। यहाँ देखना शब्द एक और तरह से भी बहुत उपयोगी है, देखना का अर्थ केवल आँख से देखना नहीं होता है, बल्कि देखने का अर्थ होता है किसी भी तरह से जानना। हम घर में रहते हुए विचार कर सकते हैं कि हम सब्जी में नमक देखते हैं। दाल-सब्जी का नमक भला आँखों से कैसे दिख सकता है। लेकिन हम प्रतिदिन के व्यवहार में यह प्रयोग अवश्य करते हैं। वास्तव में देखा जाता है चखकर। कहते हैं, देखो! बाहर शोर कैसा हो रहा है, लेकिन देखा जाता है सुनकर। देखो! यह गन्ध कैसी है, लेकिन देखा जाता है सूँघकर। वैसे ही हम स्पर्श से देखते हैं कि वस्तु नरम है, कठोर है। तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनमें रूप में देखना शब्द सरल दिखाई देता है, स्वाभाविक दिखाई देता है और जगहों पर जब हम देखना शब्द प्रयोग करते हैं तो व्यवहार में तो करते हैं लेकिन विचार की बात आती है तो हम देख थोड़े ही रहे होते हैं। लेकिन देखने का मूल अर्थ है जानना, प्रत्यक्ष करना। तो जिससे जो चीज प्रत्यक्ष हो रही है, उससे देख रहा है। जैसे शब्द का कान से प्रत्यक्ष होता है, आँख से रूप का प्रत्यक्ष नासिका से गन्ध का प्रत्यक्ष होता है तो नासिका से गन्ध को देखा जा रहा है। तो कोई भी चीज ऐसी नहीं है अर्थात् स्वाद का प्रत्यक्ष आप रसना से करते हो तो आप कहते हो चख कर देखो कैसा है। तो देखना शब्द सभी इन्द्रियों से घटित होता है। इसलिए इन सबसे जानना, देखना ही होता है। तो यहाँ पर जो बात कही जा रही है उसमें रोचक बात है कि परमेश्वर के ज्ञान को आप किसी भी इन्द्रिय से देखो तो वह पकड़ में आना चाहिए, किन्तु नहीं आ रहा है तो हमारे अपने कारणों से-इन्द्रियों की असमर्थता से, मन के लगे होने से, हमारी योग्यता के न होने से, बहुत से कारण होते हैं जिनके कारण सामने पड़ी वस्तु भी दिखाई नहीं देती। तो मन्त्र कह रहा है- उ तत्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्, 'त्व' मतलब कोई। अर्थात् सबके साथ ऐसा नहीं है। परमेश्वर की बातों में जानने की, समझने की बात इतनी है कि उसकी ओर से किसी चीज पर भी प्रतिबन्ध नहीं है। न उसकी ओर से किसी चीज पर भी प्रतिबन्ध नहीं है। न उसके पास जाने पर प्रतिबन्ध है, न उसे पाने प्रतिबन्ध है। मनुष्य में और उसमें जो सबसे बड़ा अन्तर है वह सही है कि मनुष्य आपसे मिलना चाहेगा तो मिलेगा और आप लाख मिलना चाहें और वो यदि नहीं मिलना चाहता तो वह आपको नहीं मिल सकता। लेकिन परमेश्वर के साथ ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि मुझे कोई देखना चाहता है और मैं दिखना चाहता हूँ या नहीं दिखना चाहता हूँ यह बात इस पर निर्भर करती है कि मैं उसके दृष्टि के पथ में हूँ या नहीं हूँ। परमेश्वर अपने आपको कहाँ से छिपा लेगा? एक राजा के दरबार में आपको जाना है तो प्रहरी आपको रोक देता है। आपको अनुमति मिलती है तो आप मिल सकते हैं। अर्थात् उससे मिलना उसकी इच्छा पर, उसकी अनुमति पर निर्भर कर रहा है। लेकिन परमेश्वर के साथ इससे उल्टा है। उससे मिल पाना या न मिल पाना मेरी अपनी इच्छा और योग्यता पर निर्भर कर रहा है। उसकी ओर से कोई द्वार बन्द नहीं है, उसकी ओर से कोई चीज प्रतिबन्धित नहीं है।

मुश्किल मेरे साथ मेरी है, यदि मैं उसे लेने की पात्रता रखता हूँ तो मैं जब चाहूँ, जहाँ चाहूँ उससे मिल सकता हूँ उसकी बात सुन सकता हूँ, उससे बात कर सकता हूँ। यदि यह बात हमारी समझ में आ जाए तो वेद को समझना बहुत आसान हो जाएगा। अर्थात् वेद जो कह रहा है उसे आप कहीं भी सार्थक रूप में देख सकते हैं सुन सकते हैं। लेकिन हम देख रहे हैं कि वहाँ से अलग-अलग प्रसारित नहीं हो रहा है, अन्तर यह है कि जो देखना चाह रहा है उसकी भिन्नता है। यह कुछ ऐसे है कि हम सिनेमा का टिकिट लेकर जाते हैं तो कोई किसी श्रेणी का लेता है, कोई किसी श्रेणी का लेता है। परिणाम, किसी को अच्छा सुखपूर्वक दिखाई देता है किसी को कम अच्छा दिखाई देता है। तो उसमें कारण है उस प्रस्तुति में जाने वाला व्यक्ति। तो परमेश्वर सर्वव्यापक है, सर्वत्र, सदा विद्यमान है तो उसके साथ कब, कहाँ मिलेगा यह झगड़ा नहीं वहाँ तो मैं कभी भी मिल सकता हूँ। ईश्वरीय जो ज्ञान है, उस पर प्रतिबन्ध पैदा होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता, लेकिन फिर भी प्रतिबन्ध है, क्योंकि उत त्व पश्यन् न ददर्श वाचम् वह देखता हुआ भी नहीं देखता है। वह सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। वेद की वाणी को, जो देखते हुए भी नहीं देख पा रहे हैं, सुनते हुए भी नहीं सुन पा रहे हैं। तो उन्हें दिख कैसे सकता है? तो उसका उत्तरार्ध बड़ा रोचक है। उसकी उपमा बहुत ही अच्छी तरह समझ में आने वाली है। मन्त्र आगे कहता है- उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः - शायद हमारे सारे सम्बन्धों में, हमारे मानवीय सम्बन्धों में, जहाँ तक विश्वसनीयता का प्रश्न आकर टिकता है कि कौन किससे कितना खुला हुआ है- इसका एक ही उत्तर होता है कि किसकी किसके साथ कितनी विश्वसनीयता है, वो उसके साथ उतना ही खुला हुआ होता है। उसकी कौन सी बात किस से छिपी होती है, उसके विश्वसनीयता के स्तर पर निर्भर होता है। यह विचित्र स्थिति होती है। कुछ बातें बाप-बेटे में छिपी होती है, कुछ भाई-बहन में छिपी होती है, कुछ मित्रों के साथ छिपी हो सकती है। लेकिन यहाँ जो उपमा दी है वो बड़ी रोचक है- जायेव पत्यः उशती सुवासाः एक पत्नी जैसे पति के प्रति विश्वसनीयता के कारण एक-दूसरे सहज और कोई चीज प्रतिबन्धित नहीं होती, छिपी हुई नहीं होती, वैसे ही मन्त्र कहता है कि परमेश्वर की वाणी भी इसी तरह से प्रकाशित है। आपके अन्दर जो सहजता होनी चाहिए, वह इतनी ही सार्थक है जितना आपके परिवार में आपके जो पत्नी है, जो जाया है उसके साथ जो सम्बन्ध है और कैसी जाया, उसका एक विशेषण दिया है 'सुवासाः' सुन्दर है, सुवासित है, भावों से युक्त है, जो प्रेम से सम्बन्धित है। यह किसकी विशेषता आ जाएगी, वेदवाणी की विशेषता होगी यह वेदवाणी भी सुवासाः है। अर्थात् जो इसको पढ़ता है, जो इसको सुनता है, स्वीकार करता है, उसका वैसे ही कल्याण होता है, जैसे एक कल्याण चाहने वाली पत्नी अपने पति का कल्याण करती है, तो यहाँ पर जो उपमा दी है, यह उपमा बड़ी अद्भुत, सार्थक और सहज है। अर्थात् वाणी का स्वरूप हमारे लिए उतना ही विश्वसनीय स्तर पर प्राप्त हो सकता है जितने विश्वसनीय स्तर पर हम अपनी पत्नी के साथ रह सकते हैं।

तो यहाँ जो मन्त्र की विशेषता है, इसकी जो उपमा दी गयी है, यह वेदवाणी के साथ जब आप जोड़कर देखेंगे तो आपको लगेगा कि दुनिया में जैसे कोई सबसे ज्यादा हमारा भला चाहता है, हमारा कल्याण चाहता है, सुख चाहता है तो हम परिवार में एक-दूसरे के प्रति इस तरह से देखते हैं और इस मन्त्र से वेदवाणी के इस महत्त्व का पता लगता है।

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

यज्ञशाला
सुख शान्ति की शाला

धर्मेन्द जिज्ञासु

अप्रैल २०२४ ईस्वी (विक्रमी सम्वत् २०८१) १०००, प्रथम बार सर्वाधिकार लेखकाधीन

''यज्ञशाला-एक लघु काव्य'' डॉक्टर हरिवंशराय बच्चन की विख्यात और बहुचर्चित रचना ''मधुशाला'' से प्रेरित है। पाठकों को यह जानकर सम्भवत: आश्चर्य नहीं हो।

बच्चन जी की ''मधुशाला'' के प्रत्युत्तर में उन्हीं से प्रेरित होकर श्री शिव अवतार रस्तौगी, हिन्दी प्रवक्ता, मालती नगर, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) ने ''अभिनव मधुशाला'' लिखकर कविता में शराब विरोधी आन्दोलन खड़ा किया। सन् १९५४ ई. में ''मधुर प्रकाशन'' सीताराम बाजार, नई दिल्ली से प्रकाशित ''अभिनव मधुशाला'' का तृतीय संस्करण मेरे पास है-ये सम्भवत: सन् २००१ ई. में मैंने क्रय किया था। ये भी कालजयी रचना है, इसका पुन: प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार होना चाहिए, जो कि राष्ट्र निर्माण व नौजवान पीढ़ी के चरित्र रक्षा हेतु अत्यन्त आवश्यक है।

''यज्ञशाला-एक लघु काव्य'' में वैज्ञानिक, संन्यासी, डॉक्टर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी द्वारा की गई यज्ञ की विराट् व्याख्या को आधार माना गया है। यज्ञ को मात्र अग्निहोत्र तक सीमित न रखकर कृषि, चिकित्सा, विज्ञान, सेना, मजदूर, शिक्षक, विद्यार्थी, गृहिणी को समाज व राष्ट्र के प्रति योगदान के साथ-साथ यज्ञ के आध्यात्मिक अर्थों को भी काव्य रूप में ढाला गया है।

विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक संन्यासी डॉक्टर सत्यप्रकाश जी सरस्वती, यज्ञशाला के विराट अर्थ, स्वरूप तथा महत्त्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

''मैं पुरानी यज्ञशालाओं को ज्ञान-विज्ञान के विकास की वेधशालायें (Observatory), अनुसन्धानशालायें (Research Centres) और प्रयोगशालायें (Laboratories) मानता हूँ। इन्हीं में बैठकर, प्राचीन ऋषियों ने वेदांग, उपांग और उपवेदों का विकास किया था।''

महर्षि दयानन्द जी ने यज्ञ की परिभाषा में लिखा है-''यज्ञ उसे कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ-विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम मानता हूँ।''

डॉक्टर सत्यप्रकाश सरस्वती जी, आर्य समाज की भूमिका की समीक्षा करते हुए लिखते हैं- ''आर्यसमाज ने यज्ञ को रूढ़ि अर्थों में लेना आरम्भ किया है। जो लोग वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में, शिल्प में, कारखानों में, अनुसंधान शालाओं में और चिकित्सा संस्थानों में कार्य कर रहे हैं, उन्हें याज्ञिक समझा ही नहीं। क्या इन यज्ञों के ऋत्विको का आह्वान आदर सत्कार किया जाता है?''

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी (सन् १९८३ ई.) पर पहली बार अजमेर में आठ-नौ वैज्ञानिकों को स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया था। यह परम्परा आर्य संस्थाओं में चलती रहनी चाहिये।

यजुर्वेद (अध्याय १८) में प्रथम २७ मन्त्रों के अन्त में ''यज्ञेन कल्पताम्'' का महर्षि दयानन्द जी के द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थ इस प्रकार किए गए है-

१. पृथिवी, नक्षत्र, द्यौ, दिशा के प्रसंग में ''यज्ञेन पृथिवीकाल विज्ञायकेन'' (१८वाँ मन्त्र)

२. अंशु, उपांशु, मित्रावरुण, मन्थी आदि के प्रसंग में -''यजेन, अग्निपदार्थापयोगेन'' (१९वाँ मन्त्र)

३. स्रुच. कलश, ग्रावाण, वेदि, वहि-''यज्ञेनहवनादिना'' (२१वाँ मन्त्र)

४. अग्नि धर्म, अर्क, सूर्य-''यज्ञेन संगतिकरणयोग्येन परमात्मना'' (२२वाँ मन्त्र)

५. एक, तीन, पाँच संख्याओं का प्रसंग-यज्ञेन, संगतिकरणेन योगेन, दानेन, वियोगेन, वा अर्थात् जोड़, गुणन, घटाना-भाग देना। (१४वाँ मन्त्र)

६. ऋषि, दित्यवाट्, त्रिवत्स आदि गाय, भेड़ बकरी-यज्ञेन पशुपालन विधिना (२६वाँ मन्त्र)। षष्ठवाह, षष्ठौही, उक्षा-यज्ञेन पशु-शिक्षाख्येन (२७वाँ मन्त्र)

७. व्राही, यव, माष, तिल, गोधूम-यज्ञेन, सर्वान्नप्रदेन-परमात्मना (१२वाँ मन्त्र)

८. अश्मा, मृतिका, हिरण्य, लोह, सीस-यज्ञेन संगतिकरणेयोग्येन (१३वाँ मन्त्र)

जनता जनार्दन विशेषतः आर्य जनता से आशा है इस लघुकाव्य का हृदय से स्वागत करेंगे तथा आर्यजगत् के भजनोपदेशक अपनी मधुर शैली में इसे प्रस्तुत भी करेंगे।

विनीत

धर्मेन्द्र 'जिज्ञासु'

यज्ञशाला-एक लघु काव्य

धर्मेन्द्र 'जिज्ञासु'

१

सुखशान्ति चाहने को घर से,
चलता है दुःख पाने वाला।
किस पथ जाऊँ असमंजस में,
है किन्तु भोला भाला।
राह अनेकों बतलाते सब,
पर मैं एक बताता हूँ,
राह पकड़ तू एक वेद की,
पा जाएगा सुखशाला।।

२

जिसने तन को लक्ष्य समझा,
मुक्ति का लक्ष्य भुला डाला।
तन को विभूषित करने ही में,
अपना सर्वस्व लुटा डाला।
लेकिन सुख उसे मिलेगा-
वही शान्ति पाएगा-
जो इस तन को समझ के साधन,
इसे बनाए यज्ञशाला।।

३

जिसने मन की तृष्णा के,
दलदल में खुद को धंसा डाला।
मन के हर संकेत पे नाचा,
खुद को बंधक-नर्तक बना डाला।
लेकिन सुख उसे मिलेगा
वही शांति पाएगा-
संयम, विवेक, सदाचार से,
जो मन को बनाए यज्ञशाला।।

४

जिस परिवार में प्यार न हो,
वहाँ हरदम रहता गड़बड़ झाला।
हर मन में फुफकारे नाग,
शक और स्वारथ वाला।
लेकिन सुख वहाँ मिलेगा-
वहीं शान्ति पाओगे-
आपस के विश्वास त्याग से
जहाँ परिवार बना हो यज्ञशाला।।

५.
लपक रही है कहाँ से व्योम में,
सुगन्धित लपटों की ज्वाला।
मचल रही हैं दशों दिशायें,
सुन सुमुधुर मन्त्रों की माला।
उत्साहहीन हृदय हो जिसका,
वो यहाँ आकर के देखे-
आशा की लपटें झपटें जब
हृदय बन जाए यज्ञशाला।।

६
जात-पात और भेदभाव का,
जहाँ रहता हो बोलबाला।
सब आजादी अधिकार मांगते,
पर कर्त्तव्य जहाँ भुला डाला।
उस राष्ट्र में कहाँ शान्ति-
ऐसे राष्ट्र में सुख कहाँ?
सुख तो उसी राष्ट्र में होगा-
वही शान्ति पाएगा-
ऊँच नीच का भेद मिटा-
जय राष्ट्र बन जाए यज्ञशाला।।

७
आतंकवाद और साम्राज्यवाद का,
जब तक ना निकले दीवाला।
मत-मजहब के नाम जहाँ-
बहता हो शोणित नाला।
ऐसी दुनिया में कहाँ शान्ति-
ऐसे राष्ट्र में सुख कहाँ?
सुख तो उसी विश्व में होगा-
वही शान्ति पाएगा-
ले वसुधैव कुटुम्ब की भावना,
जब विश्व बनेगा यज्ञशाला।।

८.
मानवता को डसता जाए
जहाँ भोग का विषधर काला।
संयम और मर्यादा का,
होता जहाँ मुँह काला।
ऐसे समाज में कहाँ शान्ति-
ऐसे समाज में सुख कहाँ?
सुख तो उसी समाज में होगा-
वही शान्ति पाएगा-
भोग विलास भस्म करने,
जो समाज बनेगा यज्ञशाला।।

९
मत सम्प्रदाय के झगड़ों की,
जला चुका हो जो ज्वाला।
मानव के शोषक फन्दों को,
काट चुका जो मतवाला।
पर उपकार में ही जिसने-
सर्वस्व समर्पण कर डाला।
ऐसे हर मानव का स्वागत-
करती मेरी यज्ञशाला।।

१०
इदन्न मम्-इदमराष्ट्राय की,
जपी न कभी जिसने माला।
कह स्वाहा स्वाहा जिसने न कभी,
घी अग्नि में डाला।
हत् भागी ऐसे प्राणी को-
सुख कहाँ और शान्ति कहाँ?
मरघटवासी समझो उसे-
जो आया न कभी भी यज्ञशाला।।

११
जिस घर में विद्वान् पिलाते,
ज्ञानामृत का भर-भर प्याला।
नर-नारी सब मिलकर करते,

पावन कर्म ऋषियों वाला।
जीते जी का स्वर्ग वहीं है-
और शान्ति उस घर में-
चहक रहे सब दे आहुति,

१२

महक रही जहाँ यज्ञशाला।।
मन बेचैन करे हरदम ही,
जिसके अन्तर की ज्वाला।
चैन-चैन दिन रैन जो ढूंढे,
जीवन लगता हो जंजाला।
जीवन के सन्ताप शोक
सब आकर यहाँ मिट जाते हैं,
मन जंगल हो जिसे जलाना-
वो आए मेरी यज्ञशाला।।

१३

देखो साल में एक बार ही,
जलती होली की ज्वाला।
देखो जलती कातिक में,
एक बार ही दीपों की माला।
दुनिया वालों किन्तु कभी तुम-
आकर यज्ञालय में देखो-
प्रात: होली, शाम दिवाली-
रोज मनाती यज्ञशाला।।

१४.

धीमा जहर नसों में घुलता,
उड़ रहा धूम काला-काला।
इरे-डरे जी रहे सब
पीकर प्रदूषण की हाला।
आज विश्व की शान्ति को,
अंधी तरक्की निगल रही।
प्रदूषण है असुर अगर तो-

१५

ब्रह्मास्त्र है मेरी यज्ञशाला।।
जहाँ हृदयों का मिलन रोकता,
जाति का भीषण ताला।
ऊँच-नीच की दीवारों से,
निकले मानवता का दीवाला।
भटकने वालों तुमको आखिर-
इक दिन यहीं आना होगा-
वन, पनघट ये नीर पिलाती,
हर प्यासे को यज्ञशाला।

१६

भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी,
जिसने हँसते-हँसते सह डाला।
धरती की शक्ति में जिसने,
निज श्वेद-रक्त मिला डाला।
जिनके दम से देश कुशल है-
आओ नमन इन्हें कर लो।
हर कृषक है ऋषि अगर तो,
हर खेत बना है यज्ञशाला।।

१७

छोड़ दिया घर-बार वीर ने,
देश की सीमा पर डेरा डाला।
इसने घुसा जो भी फनियर,
उसे पैरों तले कुचल डाला।
उसी राष्ट्र में सुख होता है-
शांति उसी में रहती है-
हर सैनिक समिधा है जहाँ

१८

हाड़-मांस के पुतले में,
जिसने भर दी भावों की ज्वाला।
चलते-फिरते यन्त्र को जिसने,
अलौकिक मनुज बना डाला।
उसी राष्ट्र की शांति अक्षुण्ण है-
सुख का भी वहीं बसेरा है-
जहाँ याज्ञिक हर शिक्षक हो,
हर विद्यालय जहाँ हो यज्ञशाला।।

१९.
पुष्टिकारक, स्वास्थ्यवर्धक-
और पदार्थ सुगन्धिवाला।
गोघृत के संग जितना भी,
अग्नि में जाता डाला।
ये ऐसी निर्लोभी वैरागन,
कुछ भी पास नहीं रखती।
सहस्त्रगुणा हर कण को कर,
चहुँ ओर लुटाती यज्ञशाला।।
२०.
है आधार, परिवार राष्ट्र की,
विदुषी वीर सजग वाला।
कर्त्तव्य पर अडिग सर्वदा,
उर अंदर लिए कई ज्वाला।
उस राष्ट्र की सुख शांति को-
दे सकता कौन चुनौती है,
हर नारी का हृदय जहाँ,
बन चुका हो पावन यज्ञशाला।।
२१
नर नारी का भेद करे ना,
ना कोई बंधन उमर वाला।
ऊँच नीच धनीनिर्धन की
फेरे कभी नहीं माला।
खुले हृदय से सदा स्वागत-
होता सबका यज्ञशाला में,
समाजवाद की चिर प्रचारक,
है मेरी ये यज्ञशाला।।
२२
मन चंचल, तन कोमल-
हर सुकुमार जहाँ का हो आला।
मुट्ठी में तूफान बन्द,
हृदय में पावन उजियाला।
उन्नति के पथ पर-
उस देश का बढ़ना निश्चित है।
हर बच्चा जहाँ हवि राष्ट्रहित,
हर कक्षा जहाँ हो यज्ञशाला।।
२३
वो आशा की किरण,
जय हो मृत्यु का समय आने वाला।
हर दुखिया के दिल में मान,
दूजे ईश्वर का पाने वाला।
हर ईर्ष्या द्वेष से उठ ऊपर,
मात्र गरीज का हित चाहने वाला।
क्यों ना सुखी यह राष्ट्र हो-
क्यों ना उसमें शान्ति हो-
हर चिकित्सक हो याज्ञिक जहाँ,
चिकित्सालय जहा हो यज्ञशाला।।
२४
रग-रग में जिसकी मेहनत,
नस-नस में पौरुष की ज्याला।
धरती सागर वन पर्वत,
सबको धुन कर रख देने वाला।
जिसके शस्त्र सन्तोष धैर्य,
भूख-प्यास के संग जीने वाला।
उसके जीते जी कभी-
कोई राष्ट्र नहीं मिट सकता है-
हर श्रमिक हो हवि जहाँ,
हर कार्यस्थल हो यज्ञशाला।।
२५
बड़भागी वह व्यक्ति,
जिसने कोई कुआ खुदवा डाला।
उससे बढ़कर वह पुण्य भागी,
जिसने जलाशय बनवा डाला।
सौ जलाशयों का पुण्य,
मिलता है उसी व्यक्ति को।
पिलाने को वेदामृत जग को,
जो बनवाए यज्ञशाला।।

२६
नेता में जय असुरो ने,
यज्ञ करना मुश्किल कर डाला।
मुनियों की व्यथा,
राम ने यह संकल्प कर डाला।
विध्वंस करे जो यज्ञों का,
मैं उसको ना जीवित छोड़ूंगा।
संरक्षण में श्रीराम के,
महक उठी फिर यज्ञशाला।।
२७
आचार्य चाणक्य जिसने,
चन्द्रगुप्त सम्राट बना डाला।
एक सूत्र में बांध पुनः,
आर्यावर्त महान् बना डाला।
जिस सिकन्दर के साहस से,
कुछ दुनिया हैरान हुई।
वो भीखुद हैरान रह गया,
देख चाणक्य की यज्ञशाला।।
२८
इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठर ने,
जय राजसूय यज्ञ रच डाला।
पग-पग पर मय शिल्पी ने,
कुतूहल अजेय कर डाला।
कितना अदभुत पल था जब-
श्रीकृष्ण बने थे रखवाले।
देश-विदेश के अधिपति योले,
क्या खूब सजी है यज्ञशाला।।
२९
हाय समाज में जाने कहाँ से,
आया समय यह काला।
मातपिता भयभीत हैं मन में,
कहीं जाना ना पड़ जाए वृद्धशाला।
यज्ञालय में आने वाले,
बच्चे लेकिन ये कहते हैं-
वृद्धाश्रम नहीं अब मात-पिता,
नित संग चलेंगे यज्ञशाला।।
३०
सदियों बाद धरा पे आया,
ऋषि एक वेदों वाला।
पर उपकार के हर कार्य को,
जिसने यज्ञ बना डाला।
घी, सामग्री, समिधा वन-
जिसने खुद को बलिदान किया,
विश्व-मित्र बन ऋषि दयानन्द,
जग को बना गए यज्ञशाला।।
31
अंतरिक्ष, पृथ्वी, सागर को-
निज बुद्धि बल से मथ डाला।
सूर्य चन्द्र तारागण के,
रहस्यों को उजागर कर डाला।
चैन नहीं दिन रैन जिन्हें-
नमन उनकी त्याग तपस्या को,
वैज्ञानिक हैं ऋषि अगर तो-
विज्ञान केन्द्र हैं यज्ञशाला।।
३२
तन में, मन में, जन में, गण में-
करे शान्ति यज्ञशाला।
शिक्षक, सैनिक, कृषक, नारी-
सबकी शान्ति की सेतु ये,
वैज्ञानिक, मजदूर, चिकित्सक-
हो कोई भी सुख चाहने वाला।
आओ शान्ति चाहने वालों-य
बुला रही है सबको यज्ञशाला।।

गाँव-सुनपेड़, तहसील-वल्लबगढ़, जनपद-फरीदाबाद, हरियाणा-१२१००४
चल दूरभाष: ८३७६०७०७१२ अणुडाक-kumarjigyasu@gmail.com

मानवता और स्वामी दयानन्द सरस्वती

जीवन की कुछ घटनाएँ

(१) स्वामी जी महाराज एक दिन मथुरा में यमुना नदी के किनारे आसन लगाये बैठे थे। एक देवी घाट से स्नान करके जा रही थी। दयानन्द को ईश्वराराधन में लीन देखा तो चरणों पर सिर रख दिया। देवी के भीगे वस्त्रों के स्पर्श से आँख खुली तो 'माँ, माँ' कहते हुए चल दिये और गोवर्धन पर्वत के एक भग्न मन्दिर में तीन दिन, तीन रात निराहार रहकर आत्मचिन्तन में लीन रहे, गुरुजी के पास पहुँचे तो दण्डी जी ने पूछा, 'कहाँ रहे तीन दिन, दयानन्द?'

"क्षमा करें, गुरुदेव, मैं एक प्रायश्चित्त की अग्नि में तपता रहा।"

"कैसा प्रायश्चित्त?" गुरुजी ने आश्चर्य से पूछा।

स्वामी दयानन्द जी ने स्त्री-स्पर्श की घटना सुनाई, जिससे विरजानन्द जी ने समझ लिया कि यह आत्मा कुछ करके दिखानेवाली है।

(२) शीतकाल में चाँदनी रात थी, गङ्गा किनारे दयानन्द केवल कौपीन पहने समाधि लगाये बैठे थे। बदायूं के कलक्टर और उनके साथी एक अंग्रेज पादरी उधर से आ निकले और खड़े होकर आश्चर्य से देखने लगे। समाधि खुली तो कलेक्टर साहब ने पूछा "आप ऐसी ठण्डी में एक लंगोट पहने बैठे हैं?...और हम..." बात काटकर पादरी महोदय बीच में ही बोल उठे..."इनको सर्दी कहाँ? माल खाकर मोटे हो गये हैं।" दयानन्द जी ने कहा- "हम दाल-रोटी खानेवाले माल क्या खायेंगे। मछली, मदिरा, अण्डों को माल समझने वाले, माल तो आप खाते हैं। माल खाने-न-खाने का सर्दी से क्या सम्बन्ध है?" पादरी ने पूछा- "फिर इसका कारण?" कहा स्वामी जी ने- "ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास।" कलेक्टर साहब ने पादरी को चुप रहने का संकेत किया।

(३) कासगंज में जैसा कोई रूखा-सूखा भोजन लाकर देता, उसे स्वामी जी खा लेते थे। जितनी आवश्यकता होती उतना रखकर, बाकी बाँट देते। कहा करते- **अन्नं न निन्द्यात्तद्व्रतम्** अर्थात् अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

(४) अजमेर में किसी ने आकर समाचार दिया कि भरतपुर के चर्मकारों के गंज में आग लग गयी। दीनबन्धु दयानन्द उसी समय सहायता के लिये तैयार हो गये। तदनन्तर उनकी झोपड़ियाँ फिर से बनवाने के लिये लोगों को चन्दा देने की प्रेरणा दी और उन गरीबों को धैर्य दिया।

(५) स्वामी जी के शाहपुरा निवास-स्थान के पास एक नयी बन रही कोठी की छत टूट पड़ी। कई पुरुष नीचे दब गये, पता लगने पर आपने आगे-आगे जाकर जिस शिला के नीचे वे दब गये थे, उसे अकेले ही अपने भुजाबल से हटाकर उनको जीवन-दान दिया।

(६) लाहौर में एक दिन पं. शिवनारायण अग्निहोत्री आते हुए स्वामी जी की भेंट के लिये कुछ पुष्प लाये। स्वामी जी ने कहा- "अग्निहोत्री जी! आपने यह अच्छा नहीं किया। प्रकृति ने इन पुष्पों को जितने दिन सुगन्ध फैलाने के लिये रचा था, आपने उससे पहले ही इनको तोड़ लिया। अब ये शीघ्र ही सड़कर सुगन्ध के स्थान पर दुर्गन्ध फैलायेंगे, वृक्ष पर लगे रहते तो उससे बहुत मनुष्यों को लाभ होता और स्वयं समय पर गिरते तो उत्तम खाद का काम देते।"

(७) बुलन्दशहर के नन्दकिशोर स्वामी जी के दर्शन के लिये आ रहे थे। रास्ते में पड़ते एक खेत से कुछ फलियाँ तोड़कर भेंट करने के लिये ले गये। इस भेंट पर स्वामी जी ने कहा- "ये फलियाँ चोरी करके लाये हो?" नन्द जी चौंककर बोले- "चोरी?" स्वामी जी ने कहा- मालिक की आज्ञा के बिना किसी की चीज लेना ही चोरी है।

(८) स्वामी जी एक बाग में भ्रमण कर रहे थे। रामप्रसाद विद्यार्थी साथ था। उसने बाग में गिरा हुआ एक आम उठा लिया। स्वामी जी को जब पता चला, तब अप्रसन्न होते हुए बोले- "यह आम तुमने मालिक की आज्ञा के बिना क्यों उठाया? क्या यह बाग तुम्हारे बाप-दादा का है?" विद्यार्थी क्षमा माँगने लगा। तब स्वामी जी ने कहा- "नहीं, तुम्हें दण्ड दिया जायेगा।"

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)

बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक,
कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-

00080000100067176

IFSC - PUNB0000800

UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें।

परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन कें भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से २९ फरवरी २०२४ तक)

१. मै. जे.पी.एम. मैन्युफक्चरिंग कं., जालन्धर २. श्री एम. एल. मीना, अजमेर ३. श्री जितेन्द्र मीना, डूंगरपुर ४. श्री निहाल निर्वाण, इन्दौर ५. श्री भवानीशंकर शर्मा, उदयपुर ६. श्री उम्मेदसिंह पंवार, अजमेर ७. श्रीमती मीनाक्षी मेहता, गुरुग्राम ८. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ९. डॉ. वेदपाल, मेरठ १०. मै. स्वस्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ११. श्रीमती उमा मोंगिया, नई दिल्ली १२. श्री ईश्वरानन्द शर्मा, इलाहाबाद १३. श्री अशोक कुमार गुप्ता, दिल्ली १४. श्री नाथूलाल त्रिवेदी, अजमेर १५. श्रीमती रामप्यारी देवी त्रिवेदी, अजमेर १६. श्री नरेश गोयल, पंचकुला १७. श्री ए.के. गांधी, मेरठ १८. डॉ. प्रवीण माथुर, अजमेर १९. श्री तेजवीर, दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से २९ फरवरी २०२४ तक)

१. श्री राजेश त्यागी, अजमेर २. श्री विजय कुमार अग्रवाल, अजमेर ३. श्री दीपक शर्मा, अजमेर ४. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ५. श्रीमती उमा मोंगिया, नई दिल्ली ६. श्रीमती कौशल्या देवी, अजमेर ७. श्री राधेश्याम, अजमेर ८. श्री ज्वालाप्रसाद शर्मा, अजमेर ९. श्री गजानन्द खण्डेलवाल, अजमेर १०. डॉ. अश्विनी तिवारी, अजमेर ११. श्रीमती दीपशिखा क्षेत्रपाल, अजमेर १२. श्री निशान्त, अजमेर १३. श्रीमती अनिता बाल्दी, अजमेर १४. श्री कार्तिक, जयपुर।

अन्य प्रकल्पों में सहयोग

(०१ से ३१ जनवरी २०२४ तक)

१. श्री नरेश कुमार, करनाल २. श्री ओजस्वी आर्य, अजमेर ३. श्रीमती माधुरी आर्या, मुजफ्फरपुर ४. मै. शारदा चैरिटेबिल ट्रस्ट, अजमेर ५. मै. आर्या चैरिटेबिल ट्रस्ट, राँची ६. श्री निखलेश सोमानी, अजमेर ७. श्री राधेश्याम भूतड़ा, अजमेर ८. श्री मेघराज राठी व अनुपम राठी, दिल्ली ९. श्री सुभाष साहनी, अजमेर १०. श्री देवमुनि व श्रीमती उर्मिला, अजमेर ११. श्री जगदीशचन्द्र झँवर, अजमेर १२. श्रीमती रमा देवी नवाल, अजमेर १३. श्री सदाशिव सगित्रा, उज्जैन १४. श्रीमती कमला देवी, अजमेर १५. श्री विजयकरण सोनी, किशनगढ़।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष '**सत्यार्थप्रकाश**' के साथ '**महर्षि का जीवन-चरित्र**' एवं '**आर्याभिविनय**' पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

२०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१७-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

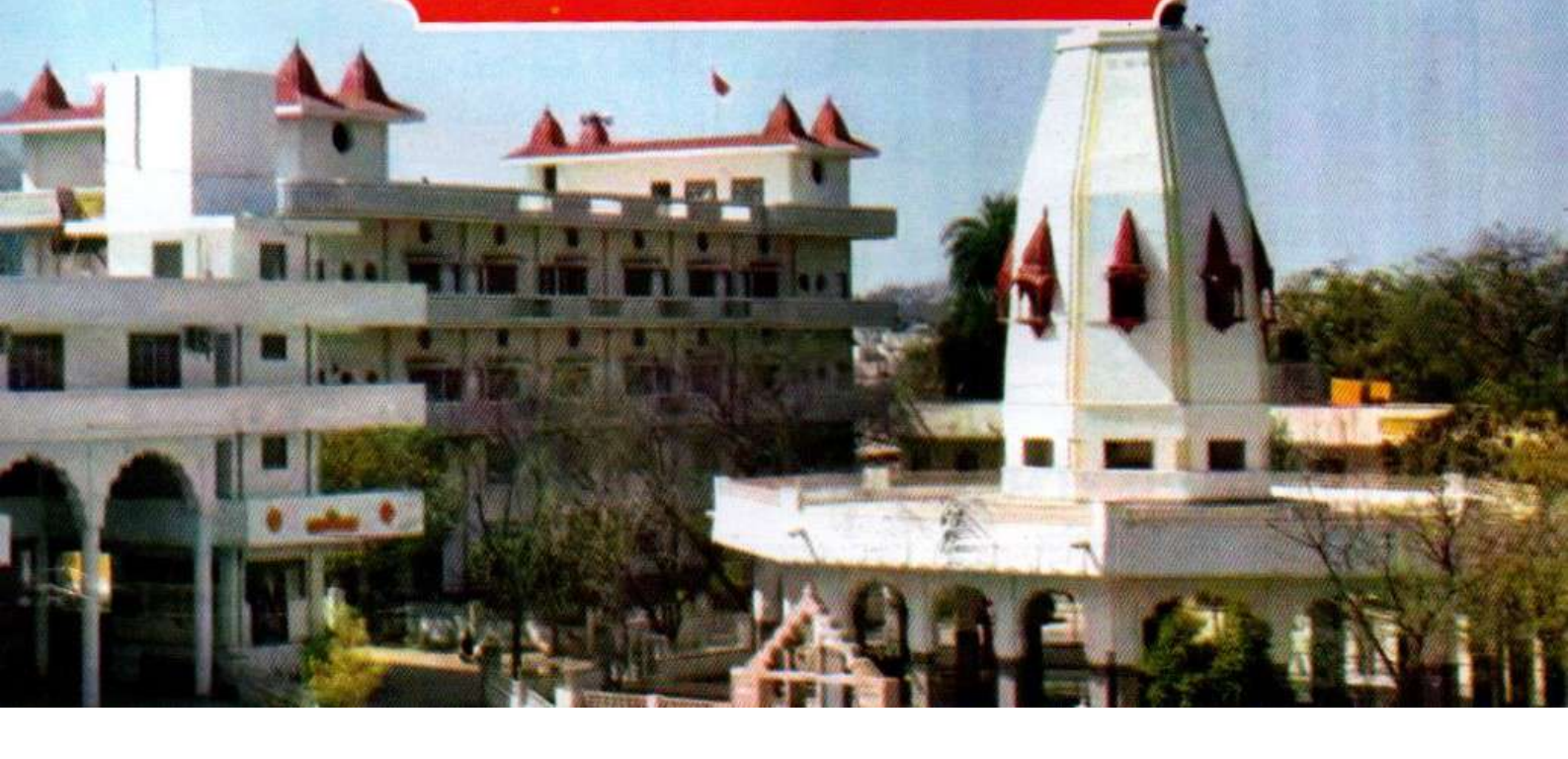

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : २९-३० अप्रैल २०२४ आर.एन.आई. ३९५९/५९

श्री कन्हैयालाल आर्य, मन्त्री सभा की पुस्तक सत्यार्थप्रकाश प्रश्नोत्तरी का विमोचन

८ अप्रैल २०२४

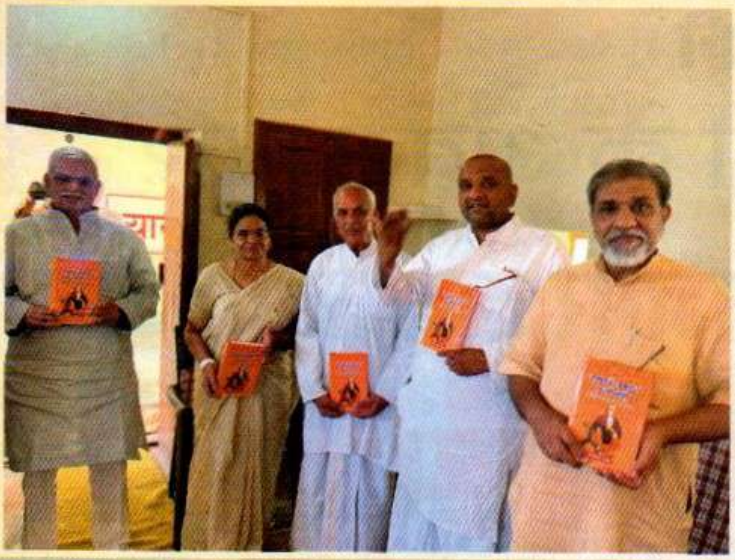

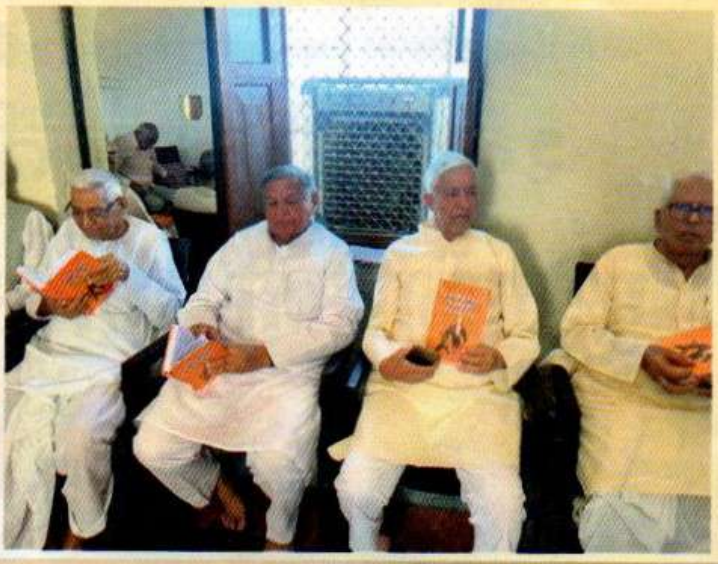

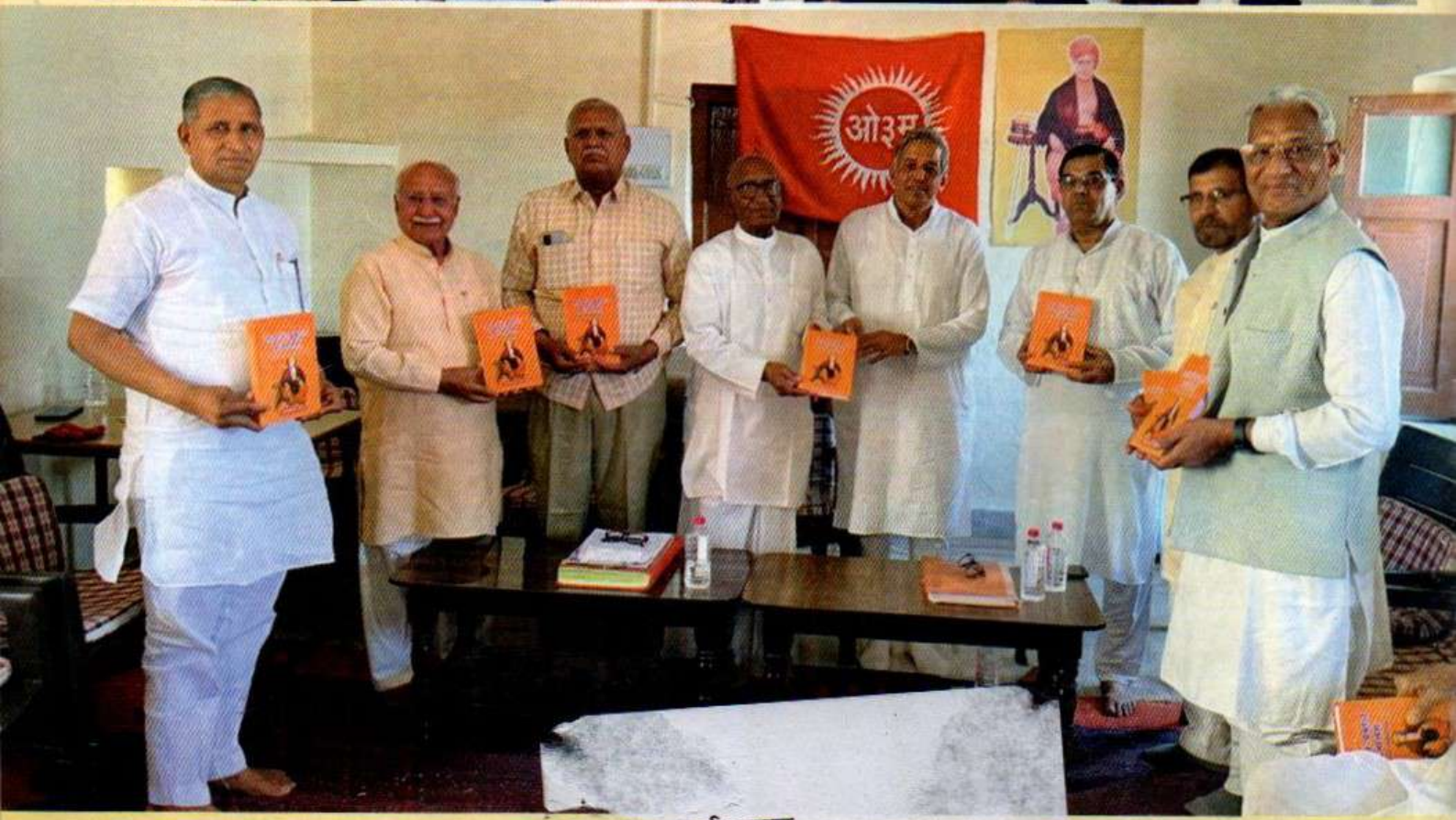

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

र्य समाज

मन्दिर के पीछे

110001

3